जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2532

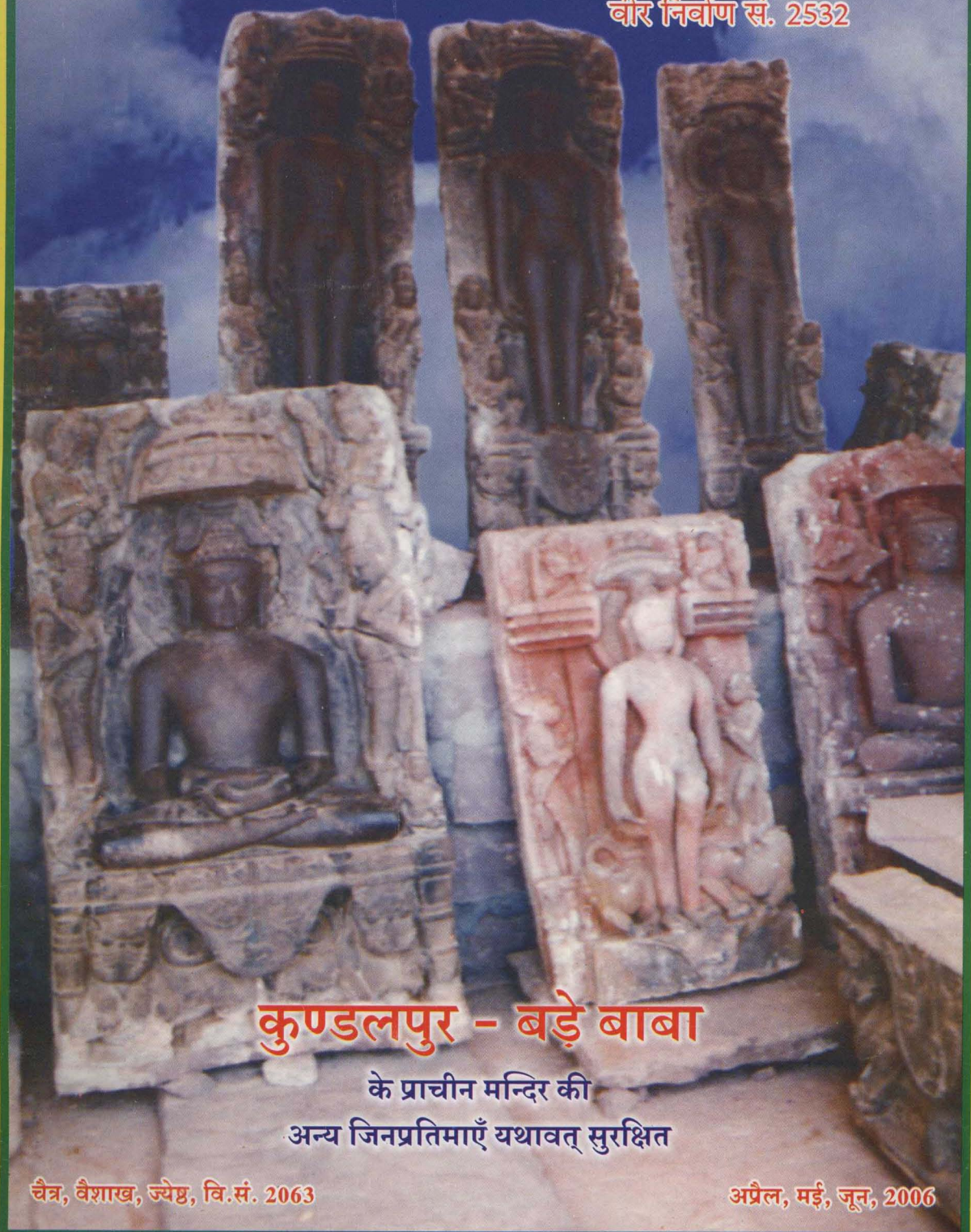

कुण्डलपुर - बड़े बाबा

के प्राचीन मन्दिर की
अन्य जिनप्रतिमाएँ यथावत् सुरक्षित

चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, वि.सं. 2063

अप्रैल, मई, जून, 2006

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

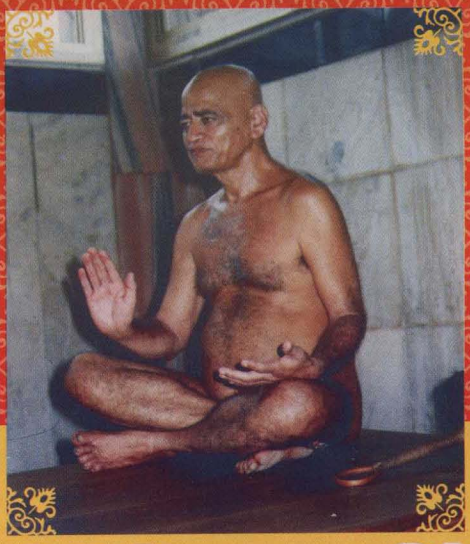

आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

१

कल्पवृक्ष से अर्थ क्या? कामधेनु भी व्यर्थ।
चिन्तामणि को भूल अब, सन्मति मिले समर्थ॥

२

तीर उतारो, तार दो, त्राता! तारक वीर।
तत्त्व-तन्त्र हो तथ्य हो, देव देवतरु धीर॥

३

पूज्यपाद गुरुपाद में, प्रणाम हो सौभाग्य।
पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य॥

४

भाररहित मुझ, भारती! कर दो सहित सुभाल।
कौन सँभाले माँ बिना, ओ माँ! यह है बाल॥

५

सर्वोदय इस शतक का, मात्र रहा उद्देश्य।
देश तथा परदेश भी, बने समुन्नत देश॥

६

पंक नहीं पंकज बनूँ, मुक्ता बनूँ न सीप।
दीप बनूँ जलता रहूँ, प्रभु-पद-पद्म-समीप॥

७

प्रमाण का आकार ना, प्रमाण में आकार।
प्रकाश का आकार ना, प्रकाश में आकार॥

८

एक नजर तो मोहिनी, जिससे निखिल अशान्त।
एक नजर तो डाल दो, प्रभु! अब सब हों शान्त॥

९

भास्वत मुख का दरस हो, शाश्वत सुख की आस।
दासक-दुख का नाश हो, पूरी हो अभिलाष॥

१०

दृष्टि मिली पर कब बनूँ, द्रष्टा सब का धाम।
सृष्टि मिली पर कब बनूँ, स्रष्टा निज का राम॥

११

गुण ही गुण, पर में सदा, खोजूँ निज में दाग।
दाग मिटे बिन गुण कहाँ, तामस मिटते राग॥

१२

सुनें वचन कटु पर कहाँ, श्रमणों को व्यवधान।
मस्त चाल से गज चले, रहें भोंकते श्वान ॥

१३

मत डर, मत डर मरण से, मरण मोक्ष-सोपान।
मत डर, मत डर चरण से, चरण मोक्षसुख-पान॥

१४

सागर का जल क्षार क्यों, सरिता मीठी सार।
बिन श्रम संग्रह अरुचि है, रुचिकर श्रम उपकार॥

१५

देख सामने चल अरे, दीख रहे अवधूत।
पीछे मुड़कर देखता, उसको दिखता भूत॥

१६

पद पंखों को साफ कर, मक्खी उड़ती बाद।
सर्व-संग तज ध्यान में, डूबो तुम आबाद॥

१७

अँधेर कब दिनकर तले, दिया तले वह होत।
दुखी अधूरे हम सभी, प्रभु पूरे सुख-स्रोत॥

१८

यथा दुग्ध में घृत तथा, रहता तिल में तैल।
तन में शिव है, ज्ञात हो, अनादि का यह मेल॥

"सर्वोदयशतक" से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

अप्रैल, मई, जून 2006 | मासिक | वर्ष 5, अङ्क 15

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(आर.के. मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428,2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे — आ.पृ. 2
- वृषभनाथस्तवन, अजितनाथ स्तुति — आ.पृ. 3
  : मुनि श्री योगसागर जी
- मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ — आ.पृ. 4
- अन्तस्तत्त्व — 1
- **सम्पादकीय** : कुण्डलपुर-घटनाक्रम — 2
- **लेख**
  - कुण्डलपुर में बड़े बाबा और छोटे बाबा — 5
    : मुनि श्री समतासागर जी
  - कुण्डलपुर-स्पष्टीकरण : पं. मूलचन्द लुहाड़िया — 7
  - कुण्डलपुर का करिश्मा : नजीर/ओमप्रकाश — 10
  - पुरावैभव के सच्चे रक्षक : डॉ. स्नेहरानी जैन — 12
  - कुण्डलपुर के बड़े बाबा का मूलस्थान..... — 16
    : ब्र. अमरचन्द्र जैन
  - बडे बाबा की प्रतिमा का संस्थापन : सुरेश जैन आई.ए.एस. — 20
  - जातिमद सम्यक्त्व का बाधक — 22
    : स्व. बाबू सूरजभान जी वकील
  - उद्दिष्ट-मीमांसा : पं. छोटेलाल बरैया — 26
  - जैन परम्परा में वर्षावास : डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' — 30
  - क्या साकांक्ष पूजा मिथ्यात्व है ? : एक विवेचन — 33
    : पं. सुनीलकुमार शस्त्री
  - श्री शान्तिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र बजरंगढ़ — 35
- **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 37
- **कविताएँ**
  - भील भोली भावना के गीत गाते : मनोज जैन मधुर — 4
  - आचार्यश्री विद्यासागर-पूजनम् : मुनि श्री प्रणम्यसागर जी — 42
  - सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम् : डॉ. कुसुम पटोरिया — 44
- **समाचार** — 45-48

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

कुंडलपुर - घटना क्रम

कुंडलपुर तीर्थ में नव निर्माणाधीन विशाल भव्य मंदिर के गर्भ गृह में बड़े बाबा की मूर्ति विराजमान हो गई। विरोधी लोग तो मूर्ति का स्थानांतरण लगभग असंभव ही मान रहे थे अथवा स्थानांतरण के प्रयास में किसी दुर्घटना अथवा मूर्ति की क्षति की संभावना से स्वयं को एवं जन साधारण को भयाक्रांत बना रहे थे। दूसरी ओर समर्थकों में से भी अनेकों के हृदय के किसी कोने में मूर्ति स्थानांतरण के कार्य की दुस्हता का विचार कर कभी- कभी शंका की लहरें उठती थीं। किन्तु बड़े बाबा की मूर्ति केअतिशय एवं छोटे बाबा के मार्गदर्शन के प्रति अनन्य श्रद्धा के प्रकाश में ऐसी दुर्बल शंकाओं की तमोमय रेखाएँ लुप्त हो जाती थी।

मूर्ति-स्थानांतरण में अनेक बाधाएँ उपस्थित किये जाने के निष्फल प्रयास किए गए, किंतु अंत में जन-जन की भावनाओं की, सत्य की, श्रद्धा की एवं धर्म की विजय हुई और बड़े बाबा की मूर्ति पुराने अपर्याप्त जर्जर अँधेरे स्थान से स्थानांतरित हो नवनिर्माणाधीन उपयुक्त स्थान पर आ विराजित हुई। यह बात सर्व मान्य है कि मूर्ति के स्थानांतरण का कार्य असंभव नहीं, तो अत्यंत कठिन अवश्य था। फिर इतनी सहजता से यह कार्य कैसे सम्पन्न हो सका। मैं तो कहता हूँ कि यदि बड़े बाबा स्वयं स्थानांतरित होना नहीं चाहते, तो कोई भी शक्ति उनको स्थानांतरित नहीं कर पाती, जैसा कि पूर्व में हुआ था। अत: बड़े बाबा की मूर्ति के इस सहज, सफल एवं निर्विघ्न स्थानांतरण में बड़े बाबा की स्वयं की मर्जी ही सबसे बड़ा कारण रही, यह सुनिश्चित है। फिर बड़े बाबा की मर्जी के आगे उनको नए स्थान पर लानेवाले कौन और उसका विरोध करने वाले कौन ? अब तो हम सबको बड़े बाबा की मर्जी का समादर करना चाहिए और सभी को मिलकर बड़े बाबा की मर्जी को स्वीकार कर उनके चरणों में नतमस्तक हो जाना चाहिए।

बड़े बाबा की मर्जी जानने के लिए हमें बड़े बाबा से ही पता लगाना चाहिए। बड़े बाबा के समक्ष खड़े होकर एकाग्रता से उनके दर्शन कीजिए। हम पायेंगे कि नीचे अँधेरे से ऊपर प्रकाश में आने पर बड़े बाबा की सौम्यता, सुंदरता, ऊर्जा एवं प्रभावकता में अनेक गुणी वृद्धि हो गई है। यही तो सिद्ध करती है कि बड़े बाबा की स्वयं की मर्जी नए स्थान पर आने की थी। बड़े बाबा की मर्जी के साथ-साथ जन-जन की भावनाएँ एवं तरसती आँखें भी बड़े बाबा को इस नूतन विशाल मंदिर के गर्भगृह में लाने का कारण रही हैं। आज बड़े बाबा के भव्य दर्शन इस नवीन भव्य मंदिर में भव्यता के साथ पाकर जन-जन अपने अतिशय पुण्य के उदय का अनुभव कर रहा है और वीतराग प्रभु के दर्शन से उत्पन्न भावों की विशेष विशुद्धि से विशेष पुण्यबंध के साथ कर्मों की संवर-निर्जरा भी कर रहा है।

फिर भी कुछ लोगों के मन में कुछ प्रश्न उठते हैं। आइए हम उन पर भी विचार कर लें।

एक बात तो यह की जाती है कि जिनमंदिर में से मूल नायक भगवान् की प्रतिमा को स्थनांतरित नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रश्न के समर्थन में प्रश्न कर्ता के पास कोई आगमप्रमाण नहीं है। उत्तर में हमारा प्रतिप्रश्न है कि यदि कोई मंदिर जर्जर होकर ध्वस्त हो जाय, यदि कोई बाढ़ क्षेत्र में आ जावे, यदि कोई क्षेत्र निर्जन एवं असुरक्षित हो जाये, यदि किसी छोटे अपर्याप्त क्षेत्र के स्थान पर विशाल भव्य मंदिर का निर्माण करा दिया जाये, तो हमें मूलनायक भगवान को स्थानांतरित करना चाहिए या नहीं ? मुझे विश्वास है कि प्रश्नकर्ता का उत्तर स्थानांतरण के समर्थन में होगा। इतिहास के पृष्ठों में अंकित अनेक उदाहरण आवश्यक होने पर स्थानांतरण का पुरजोर समर्थन कर रहे हैं। स्वयं बड़े बाबा पूर्व में किसी अन्य स्थान पर स्थानांतरित हुए थे। पाकिस्तान बनने पर मुल्तान शहर के जिनमंदिर की मूलनायकसहित सभी मूर्तियाँ जयपुर लाकर स्थापित की गई थीं। श्रीमहावीर जी अतिशयक्षेत्र में मूलनायकमूर्ति ऊपर की मंजिल का निर्माण होने पर नीचे से ऊपर स्थानांतरित की गई आदि।

दूसरा प्रश्न यह उठाया जाता है कि धार्मिक क्षेत्र में राजाज्ञा का उल्लंघन न तो श्रावकों को ही करना चाहिए और न उसका समर्थन दिगम्बर मुनिराजों को करना चाहिए। उत्तर में निवेदन है कि वस्तुत: नवीन मंदिर निर्माण के विरुद्ध अभी जारी की गई राजाज्ञा अविधिसम्मत है। कुंडलपुर तीर्थक्षेत्र के मंदिर केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के नियंत्रण में कभी नहीं लिए गए हैं। प्रारंभ से ही सभी मंदिरों की देखभाल जैन समाज की कमेटी ही करती आ रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंदिरमूर्तियों का निर्माण एवं रखरखाव जैनसमाज द्वारा ही किया जाता रहा है। अतः केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग को मंदिरनिर्माण को रोकने के आदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा अविधि-सम्मत निम्न अधिकारियों का आदेश राजाज्ञा की परिभाषा में नही आता और न्यायालय में चुनौती दिए जाने योग्य है।

निश्चय ही प्रश्नकर्ता के मन में यह शंका तथ्यों की जानकारी नहीं होने के कारण अथवा पक्षाग्रह के कारण उत्पन्न हुई है। जैनसंस्कृति-रक्षा-मंच जयपुर ने पुरातत्त्व विभाग को कुंडलपुर क्षेत्र कमेटी द्वारा राजाज्ञा उल्लंघन करने की शिकायत की है। आश्चर्य की बात तो यह है कि रक्षा मंच के स्वयंभू पदाधिकारियों में से किसी ने भी कभी कुंडलपुर आकर वस्तुस्थिति की जानकारी लेने का कष्ट नहीं किया और न संबंधित पत्रावलियों का अवलोकन किया। दूसरे शिकायतकर्ता सुपरिचित विद्वान् श्री नीरज जैन हैं। उन्होंने लगभग तीन चार वर्ष पूर्व दमोह की बैठक में प्रकटतः बड़े बाबा की प्राचीन मूर्ति की सुरक्षा के लिए नवीन भूकंपरोधी मंदिर के निर्माण एवं उसके वहाँ स्थानांतरण की योजना को स्वीकार कर इसके क्रियान्वयन में सहयोग करने का वचन दिया था। किंतु लोग कहते हैं कि समय के साथ लाभदृष्टि के परिवर्तन के साथ इनके सिद्धान्त भी परिवर्तित होते रहते हैं। इनकी माया ये ही जानें। मैं यह बताना आवश्यक समझता हूँ कि फरवरी, 2001 में कुंडलपुर में उपस्थित लक्षाधिक दि. जैन समुदाय के समर्थन के साथ दि. समाज की प्रतिनिधि संस्थाएँ श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी तथा दि. जैन विद्वत्परिषद ने सर्व-सम्मति से नवीन भूकंपरोधी विशाल मंदिरनिर्माण एवं बड़े बाबा की मूर्ति को उसमें स्थानांतरण के समर्थन में प्रस्ताव पारित किए थे।

संबंधित पत्रावलियों से यह स्पष्टतः सिद्ध है कि कुंडलपुर के दि. जैन मंदिरों को कभी भी राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारक घोषित नहीं किया गया। प्रारंभ से मंदिरों का प्रबंध, निर्माण, देखरेख, ज़ीर्णोद्धार पूरी तरह जैनसमाज द्वारा गठित क्षेत्र कमेटी के द्वारा होता रहा है। भूकंपों के झटकों से बड़े बाबा के मंदिर में दरारें उत्पन्न हुईं और बड़े बाबा की मूल्यवान् मूर्ति एक ओर तीन इंच झुककर टेढ़ी हो गई। तब क्षेत्र कमेटी एवं सम्पूर्ण समाज ने मिलकर भूवैज्ञानिकों की राय के अनुसार बड़े बाबा की मूर्ति की दीर्घकालीन सुरक्षा के लिए भूकंपरोधी नवीन मंदिर के निर्माण की योजना बनाई। 1988 से ही पहाड़ी पर मंदिरनिर्माण के लिए भूमि को समतल कर सम्पूर्ण भूमि को सीमेंट ग्राउटिंग द्वारा भूकंपरोधी बनाया गया। इस कार्य का समय-समय पर केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों के साथ-साथ प्रांतीय सरकार के पदाधिकारी एवं समाज के वरिष्ठ व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण किया गया और कार्य की अनुमोदना की गई। एकाधिक बार प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री महोदय ने सार्वजनिकरूप से मंदिरनिर्माण की प्रशंसा करते हुए उसमें राज्य सरकार के सहयोग का आश्वासन भी दिया। हमारे समझने या कहने से नहीं, बल्कि केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग की स्वयं की निरीक्षण टिप्पणी से भी यह सिद्ध होता है कि मंदिर 80 प्रतिशत जीर्णशीर्ण हो गया है और खतरनाक स्थिति में था। हमें अत्यंत आश्चर्य भी है और खेद भी कि पुरातत्त्वस्मारकों की सुरक्षा का नैतिक उत्तरदायित्व अपने कंधों पर ढोने वाला पुरातत्त्वविभाग यह सब देखकर भी आँख मूँद कर सोया रहा, उदासीन बना रहा और संभवतः उस घड़ी की प्रतीक्षा करता रहा, जब वह जीर्णशीर्ण मंदिर ध्वस्त होकर महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक सम्पत्ति बड़े बाबा की मूर्ति को क्षति पहुँचा दे। यह कैसी दर्दभरी त्रासदी है कि गत वर्षों से मंदिर की जीर्णशीर्ण स्थिति की जानकारी होते हुए भी केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग ने अपने कर्तव्य एवं नैतिक उत्तरदायित्व की घोर अनदेखी करते हुए बड़े बाबा की मूर्ति की सुरक्षा की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया ओर दूसरी और जब मूर्ति की सुरक्षा हेतु जैनसमाज और क्षेत्र कमेटी द्वारा आवश्यक प्रयास किए जा रहे हैं, तब एकाएक कतिपय अधार्मिक एवं असामाजिक तत्त्वों के संकेतों पर दुर्भावनावश उनमें बाधक बनते हुए माननीय उच्च न्यायालय में अनधिकृतरूप से प्रादेशिक सरकार एवं तीर्थ क्षेत्र कमेटी के विरुद्ध याचिका प्रस्तुत कर दी है। वस्तुतः केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग का यह कृत्य 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे' की कहावत को चरितार्थ कर रहा है। इस याचिका पर माननीय न्यायालय ने तथ्यों की जानकारी के अभाव में अभी अंतरिम रूप से यथास्थिति के निर्देश जारी किए हैं। तथापि इस प्रकरण में देश के सम्पूर्ण दि.जैन समाज को संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए एवं अपनी धार्मिक आराधनाओं की स्वतंत्रता के लिए प्रयास करना चाहिए। यह याचिका वस्तुतः दि. जैन समाज की अस्मिता एवं धार्मिक स्वतंत्रता पर सरकार द्वारा किया गया सीधा प्रहार है। हम पुरातत्त्व विभाग को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि बड़े बाबा की मूर्ति उनके लिए तो मात्र ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु है, किंतु देश की सम्पूर्ण दि. जैन समाज के लिए प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् धार्मिक श्रद्धा की केन्द्रभूत निधि है। पुरातत्त्व विभाग ने पहले भी मूर्ति की सुरक्षा की चिंता नहीं की है और आज भी न्यायालय से यथास्थिति प्राप्त कर मूर्ति को पुनः असुरक्षित स्थिति में पहुँचा दिया है, जो अनुत्तरदायित्वपूर्ण होने के साथ-साथ असंवैधानिक भी है। हम केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों और केन्द्रीय सरकार से निवेदन करते हैं कि हमें हमारी धार्मिक एवं आध्यात्मिक आस्था की प्रतीक इस प्राचीन मूर्ति को सुरक्षित करने में बाधक न बनें, अन्यथा देश का संपूर्ण दि. जैन समाज आंदोलन करने के लिए बाध्य होगा।

तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा के प्रकरण में हमारे अपनों में से ही कुछ व्यक्ति यदि व्यक्तिगत कुंठाओं अथवा पक्षाग्रहों के आधार पर आपसी विचारविनिमय का सहयोगात्मक मार्ग छोड़कर दि. जैन समाज के व्यापक हितों के विरुद्ध संघर्षात्मक मार्ग अपनायेंगे, तो यह हमारा दुर्भाग्य ही होगा। काश! हम यह समझ पायें कि धर्म की अप्रभावना का अथवा धर्मायतनों के विकास में बाधा डालने का छोटा सा कार्य भी आग की चिनगारी की भाँति हमारे लिये भारी हानि का कारण सिद्ध होगा।

यह प्रसंग हमें यह प्रेरणा देता है कि देश की सम्पूर्ण दि. जैन समाज को अपने तीर्थक्षेत्रों एवं धर्मायतनों की सुरक्षा के संबंध में गंभीर विचार करना चाहिए। इस प्रजातांत्रिक शासन के युग में संगठित और अनुशासित समाज को ही सम्मानपूर्वक जीने और अपने अधिकारों की सुरक्षा करने का अधिकार है। इस न्यायिक प्रकरण का निर्णय दि. जैन समाज के अस्तित्व एवं अस्मिता के संबंध में दूरगामी प्रभाव डालने वाला होगा।

मूलचंद लुहाड़िया

भील भोली भावना के गीत गाते

वनवासियों की ओर से मुनि श्री चिन्मय सागर जी को समर्पित

मनोज जैन 'मधुर'

१

मुंदित हो,
ठुमके लगाकर,
गाँव का,
हर पाँव नाचा।
भक्ति की,
इस भावना का,
हर नयन ने,
भाव बाँचा,
विविध वर्णी पुष्प चरणों में चढ़ाते।
भील-भोली,
भावना के
गीत गाते।

२

त्यागते,
आहार-आमिष
देख मूरत
त्याग की।
भावना
भाते-शरण में,
बैठकर
वैराग की।
मुनिश्री की,
चरण-धूली,
सिर लगाते,
भील-भोली
भावना के गीत गाते

३

बस्तियाँ
शापित अहिल्या
की तरह
पथ हेरतीं।
मुक्ति पाने
भवभ्रमण से
मुनिश्री को टेरतीं।
उपदेश गौतम का
मुनी इनको सुनाते।
भील-भोली
भावना के
गीत-गाते।

इंदिरा कालोनी, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंडलपुर के बड़े बाबा और छोटे बाबा

मुनि श्री समतासागर जी

म.प्र. के दमोह जिले से लगभग 35 किमी दूर पटेरा ग्राम के निकट कुण्डलाकार पहाड़ी में अवस्थित सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर अपनी प्राचीनता, पवित्रता और अतिशयता के लिए प्रसिद्ध है। दिगम्बर जैनमंदिरों की मनोज्ञता, सुरम्य पर्वतमाला एवं अंतिम केवली श्रीधरस्वामी की मुक्तिस्थली होने से इस क्षेत्र की ख्याति दूर-दूर तक है। इस क्षेत्र के 64 जिनमंदिरों में सबसे प्राचीन मंदिर प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान का है। इन्हें ही बड़े बाबा के नाम से जाना जाता है। पद्मासन मुद्रा में यह प्रतिमा 15 फीट ऊँची और 11 फीट चौड़ी है। बड़े बाबा का मंदिर लगभग ईसा की छठी सदी में पहली बार बना। प्रतिमा के बारे में अनुमान है कि लगभग 1500 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। मन्दिर की दीवारें बनती और मिटती रहीं, किंतु बड़े बाबा आज भी यथावत् बने हुए हैं। मन्दिर की बाह्य दीवारें ही नहीं सम्हालना हैं, बल्कि अंदर स्थित प्रभु की प्रतिमा का संरक्षण ही असली पुरातत्त्व की रक्षा है। सो, समय समय पर प्रतिमा की सुरक्षा के लिए मंदिर का जीर्णोद्धार कार्य होता रहा। बड़े बाबा की कृपा से अपना खोया हुआ राज्य पुनः पाने पर ईसवी सन् 1657 में पन्ना नरेश महाराजा छत्रसाल ने इस मंदिर के जीर्णोद्धार में सहयोग देकर प्रतिष्ठाकार्य सम्पन्न कराया। स्वयं कार्यक्रम में सम्मिलित होकर मंदिर के लिए सोने-चाँदी के चँवर, छत्र और पूजा के बर्तन भेंट स्वरूप दिए। इसी समय कुण्डलपुर के मनोहारी तालाब 'वर्धमान सागर' तथा सीढ़ियों का निर्माण भी हुआ।

सन् 1976 की बात। कटनी में ग्रीष्मकालीन प्रवास के बाद गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी संघसहित प्रथम बार कुण्डलपुरजी क्षेत्र के दर्शनार्थ पधारे। क्षेत्र की वंदना की, बड़े बाबा के दर्शन किए और फिर वहाँ पर चातुर्मास स्थापित कर लिया। आचार्यश्री के चुम्बकीय व्यक्तित्व के बारे में कहा जाता है कि जो उन्हें एक बार देखता है, वह उन्हीं का हो जाता है। किन्तु यहाँ कुछ ऐसा हुआ कि बड़े बाबा के दर्शन कर आचार्यश्री उन्हीं के हो गये। क्षेत्र की प्राकृतिक छटा में गहन चिन्तनमनन और स्वाध्याय-साधना चलती रही। वर्षाकाल में पर्वतराज से वर्धमानसागर की ओर बहते हुए झरनों को आचार्य श्री ने कुछ इस तरह निरूपित किया -

झर झर बहता झरना
कहता चल चल चलना
उस सत्ता से मिलना
पुनि पुनि पड़े न चलना

पुराने जीर्णशीर्ण छोटे मन्दिर से बड़े बाबा को नए विशाल मन्दिर में स्थानांतरित करने की आवश्यकता विभिन्न पहलुओं से लगभग स्पष्ट हो चुकी है। सन् 2001 फरवरी माह में सम्पन्न हुए पंचकल्याणक, गजरथ और महामस्तकाभिषेक महोत्सव में देशप्रदेश के जन-प्रतिनिधि, समाज के मूर्धन्य विद्वान्, प्रसिद्ध उद्योगपति एवं लाखों श्रद्धालु श्रावकों ने मंदिर-नवनिर्माण पर अपना समर्थन और सहयोग दिया था।

'नई दुनिया' के स्थानीय संपादक, पत्रकार ओमप्रकाश जी ने दि. 28/2/06 को 'कुण्डलपुर का करिश्मा' शीर्षक से लिखे लेख में पुरातत्त्व की खामियों और श्रद्धालुओं की मजबूरियों के जो बिन्दु उजागर किये, वे वास्तव में चिन्तनीय हैं। यह एकदम कड़वा सच है, जिसे स्वीकारना ही होगा कि पुरातत्त्व की वस्तुओं में और धर्मश्रद्धालुओं के पूजास्थलों में बड़ा अन्तर है। पुरातत्त्व-संरक्षित किसी महल या किले की दीवार गिर जाए, तो हिंदुस्तान का नागरिक आँसू नहीं बहाएगा, उपवास नहीं करेगा, जबकि किसी भी धर्मावलंबियों के मंदिर, मूर्ति या पूजास्थलों में कुछ भी क्षति होती है, तो उसकी सारी पीड़ा वह श्रद्धालु समाज भोगता है।

17 जनवरी 06 मंगलवार के शुभ दिन अपराह्न बेला में बड़े बाबा जैसे ही नए मंदिर के भव्य सिंहासन पर विराजमान हुए, आकाशमण्डल सहित समूचा कुण्डलपुर तीर्थ जय-जयकार के नारों से गूँज उठा। भावभीने इस वातावरण में गुरुवर आचार्यश्री की आँखों से खुशी के आँसू बह निकले। मूर्ति उठने के पहले चेहरे पर झलकती चिन्ता और मूर्ति उठने के बाद प्रसन्न आत्म-विश्वास से भरे आभामण्डल द्वारा आचार्यश्री ने बिना कहे ही सब कुछ कह दिया। कार्य की सानन्द सम्पन्नता के बाद शिष्य-श्रद्धालुओं ने पूछ ही लिया गुरुवर से कि "आचार्यश्री! जब मूर्ति उठ रही थी, तो आप इतने सीरियस से क्यों थे?" आचार्यश्री का उत्तर था - "क्या बताएँ सबकी नजरें मुझ पर लगी थीं और मेरी नजरें बड़े बाबा पर लगी थीं।" पुनः पूछ लिया कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

''जब मूर्ति उठ गई, तो आँखों से इतने आँसू क्यों बह निकले?'' आचार्य श्री का उत्तर था- ''मैं सोच रहा था, बड़े बाबा मेरे साथ हैं कि नहीं। पर जैसे ही प्रतिमा उठी तो ऐसा लगा कि हाँ ! बड़े बाबा मेरे साथ है। बस इसी सुखद अनुभूति में ही.....''

20 वर्ष का युवा सरदार एक बहुत बड़ी क्रेन को हैण्डिल कर रहा था। मूर्ति उठाने में वह काफी प्रयासरत था, पर मूर्ति उठ नहीं रही थी। वह निराश सा आचार्यश्री के पास आशीर्वाद लेने आया। गुरुवर ने अपना आशीर्वाद देते हुए उसे प्रोत्साहित किया। साथ ही साथ कुछ संकेत-निर्देश भी दिया। उस बेटे सरदार को बात समझते देर न लगी और उसने मन में कुछ ध्यान कर पुनः गुरुवर का आशीर्वाद लिया। सरदार ड्रायवर सीट पर बैठा और ज्यों ही क्रेन संचालित की, कि मूर्ति एकदम फूल की तरह उठकर निर्माणाधीन नए मंदिर की ओर बढ़ गई। रहस्य केवल इतना था कि युवा सरदार अपने घरेलू संस्कारों में शाकाहारी नहीं था। अतः ज्यों ही उसने मांसाहार-त्याग का संकल्प लिया, उसके ब्रेन और क्रेन एकदम काम कर उठे। सच ही है, अहिंसा के देवता की मूर्ति अहिंसक आचरणवान् से ही आगे बढ़ सकती है।

जिस दिन बड़े बाबा संघसहित गुरुवर और हजारों-हजार श्रद्धालुओं की साक्षी में नवीन वेदिका पर विराजमान हुए, उस दिन गोंदिया (महाराष्ट्र) में आदिनाथ भगवान के जन्मकल्याणक का उत्सव चल रहा था। समूची धर्मसभा ''ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं बड़े बाबा अर्हं नमः'' का मंत्रोच्चारण कर रही थी। आचार्य श्री आदेश/आशीर्वाद से भले ही हम दोनों (मुनि श्री समतासागर जी एवं ऐलक श्री निश्चयसागर जी) ब्र. विनय भैया सहित गोंदिया पंचकल्याणक में थे, पर मन तो प्रतिक्षण बड़े बाबा और छोटे बाबा के चरणों में लगा हुआ था। इस शताब्दी का पहला अतिशय, पहला चमत्कार छोटे बाबा, बड़े बाबा को युगपत् नमस्कार। यह पवित्र कार्य कैसे सम्पन्न हुआ यह रहस्य सिर्फ स्वयं बड़े बाबा या छोटे बाबा आचार्यश्री ही जानते हैं। दैविक शक्तियों को सिद्धि अनुभूति इसलिये भी होती है कि जब औरंगजेब ने मूर्तिभंजन के लिए बड़े बाबा के चरणों में घन प्रहार किया, तो चरणों से दुग्ध की धारा निकली और एक साथ हजारों मधुमक्खियों ने आक्रमण कर मूर्तिभंजकों को भगा दिया। वहीं दैवी शक्तियाँ प्रतिमा-स्थानांतरण के समय नागयुगल के रूप में प्रगट तो हुईं, पर गुरुवर की उत्कृष्ट तपःसाधना और पुण्य प्रभावना से अपार जनसमुदाय में भी किसी को किंचित् भी बाधा नहीं हुई। वे शक्तियाँ बड़े बाबा की प्रतिमा के साथ आज भी हैं।

यक्षरक्षित, अतिशयकारी प्रतिमा का चुम्बकीय आकर्षण बुन्देलखण्ड ही नहीं, समूचे हिन्दुस्तान को अपनी ओर खींचे हुए है। मूर्तिभंजक औरंगजेब जैसे क्रूर आततायी को भी सद्बुद्धि बड़े बाबा के चरणों में मिली। मैं चाहता हूँ उन्हें भी सद्बुद्धि मिले, जो बड़े बाबा की प्रतिमा में प्रभु की भगवत्ता नहीं, केवल पुरातत्त्व ही देख रहे हैं। स्वयं सिद्ध साधक गुरुवर, न कंकर से लघु, न शंकर से गुरु, वरन् हम जैसे हजारों लाखों अदना अकिञ्चन किंकरों के चलते फिरते प्रभु तीर्थंकर हैं। चरणों में विनम्र भक्ति-अर्घ अर्पित करते हुए केवल इतना ही भाव प्रगट करना चाहता हूँ कि सुना है अपने अर्थराज्य की रक्षा के लिए बुन्देलखण्ड में एक महारानी लक्ष्मीबाई और एक महाराजा छत्रसाल हुए, किन्तु बुन्देलखण्ड के बड़े बाबा और छोटे बाबा के धर्म-साम्राज्य के रक्षण और संवर्धन के लिए लाखों श्रद्धालु लक्ष्मीबाइयाँ और लाखों श्रेष्ठि श्रावक छत्रसाल तन-मन-धन से संकल्पित/समर्पित हैं। गुरुवर की छत्रछाया में हुए इस कार्य में समर्पित क्षेत्र कमेटी, युवा कार्यकर्ता, समूचा समाज और त्यागीव्रती ही सही मायने में संस्कृति-संरक्षक हैं। धार्मिक तीर्थस्थलों की ऐसी सांस्कृतिक धरोहरों को सम्हालने के लिए ''आपरेशन मोक्ष'' जैसे नेक, श्रेष्ठ और समसामयिक कार्य के लिए शासन, प्रशासन और कानूननिर्माता, कानूनविद् सहायक-सहयोगी बनें। इसी शुभभावना के साथ बड़े बाबा और छोटे बाबा के चरणों में शत-शत प्रणाम।

मुनि श्री प्रमाण सागर जी के नित्य दर्शन एवं प्रवचन

आचार्य श्री विद्यासागर जी के परम प्रभावक शिष्य मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज के प्रवचन एवं आशीर्वचन आस्था चेनल पर अब 7 मई 2006 से प्रतिदिन सांय 6.00 बजे देखिये सुनिये और धर्म लाभ लीजिये।

सन्तोष कुमार जैन सेठी
डायरेक्टर - आस्था चेनल
10, प्रिंसेस स्ट्रीट, दूसरी मंजिल, कलकत्ता-1471

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंडलपुर-स्पष्टीकरण

पं. मूलचंद लुहाड़िया

30 मार्च के 'जैन गजट' में स्वतन्त्र विचारक श्री श्रीकांत चवरे, उन्हास नगर का एक प्रश्नपरक पत्र ''कुंडलपुर में जो हुआ क्या यह उचित है'' प्रकाशित हुआ। जैनधर्म और जैन धर्मायतनों पर दूरगामी प्रभाव डालनेवाली घटनाओं पर खुली निष्पक्ष चर्चा के अभाव में सामूहिक नीति निर्धारित नहीं हो पाती और मत विभिन्नताएँ जन्म लेकर समाज को कमजोर बना देती हैं।

श्री चवरे जी ने चर्चा के द्वार खोले हैं। यह स्वागत योग्य पहल है। वस्तुस्थिति की पूरी जानकारी के अभाव में प्रायः हमारे मन में अनेक गलतफहमियाँ घर कर लेने की संभावना बनी रहती है। इसके अतिरिक्त सही जानकारी के बाद भी कभी कभी पक्षपात का भूत हमें अपनी पूर्व मिथ्या धारणाओं से मुक्त नहीं होने देता। तथापि यदि हम अपनी शंकाओं को निःसंकोच सार्वजनिक रूप से प्रकट करें और समाधान आमंत्रित कर उस पर विचार करने की परंपरा डाल सकें, तो हम अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक संगठन को बनाए रख सकेंगे। आइए हम चवरे जी के प्रश्नों पर नीचे विचार करें-

1. साधारणतया व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति की दृष्टि से प्रमादवश राजाज्ञा का उल्लंघन करने की प्रेरणा वीतराग जैन आचार्य नहीं देते हैं। किंतु यदि सर्वथा अनुचित आधारों पर हमारे देवशास्त्र गुरु एवं तीर्थों पर असुरक्षा अथवा अतिक्रमण हो रहा हो अथवा धर्माचरण की पालना में बाधा उत्पन्न की जा रही हो, तो ऐसी राजाज्ञा के विरोध में धर्म की रक्षा के लिए अहिंसक आंदोलन का उपदेश आचार्य महोदय दे ही सकते हैं। प.पू. आचार्य शांतिसागर महाराज ने हरिजन-मंदिरप्रवेश-बिल के विरोध में अनशन-आंदोलन चलाया था। कुछ स्थानों पर दिगम्बर साधुओं के विहार के निषेध के विरोध में स्वयं विहार करके मार्ग खोला था।

2. मंदिर के जीर्ण होने और उसके गिरने के बारे में शंका करने से पूर्व यदि आपने स्वयं क्षेत्र का निरीक्षण किया होता, तो अच्छा होता। मंदिर के जीर्ण होने की बात केवल अपने द्वारा ही नहीं कही जा रही है, अपितु स्वयं पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों द्वारा अपनी निरीक्षणटिप्पणी में लिखा है कि मंदिर 80 प्रतिशत जीर्ण-शीर्ण हो रहा है। क्या मोटी दीवारें जीर्ण नहीं होतीं ? दीवारों में अनेक स्थानों पर भूकंप के झटकों के कारण दरारें उत्पन्न हो गई थीं और बड़े बाबा की मूर्ति 3 इंच एक ओर नीचे झुक गई थी। मूर्ति की सुरक्षा के लिए बाहर निकाले जाने पर दीवार और छत को तोड़ा जाना अनिवार्य था और संभवतः मंदिर की शेष रही दीवारें दरारें बढ़ जाने से गिर गईं। श्रद्धालुओं को किसी भी स्थिति में मूर्ति की सुरक्षा करनी थी और वह की गई।

3. आप किन दिगम्बर जैन आचार्य के बारे में कह रहे हैं, स्पष्ट करना चाहिए। मूर्ति की सुरक्षा करने के लिए दीवार तोड़कर मूर्ति को बाहर निकालने के लिए छेनी तो चलानी ही पड़ेगी। पर यह छेनी सुरक्षा के लिए चलाई गई श्रद्धालुओं की छेनी है। आतंकवादियों की क्षति पहुचाने के लिए चलाई गई छेनी नहीं है। आपरेशन के लिए डाक्टर द्वारा छुरी का प्रयोग डाकू द्वारा लूटने मारने के लिए किए गए छुरी के प्रयोग, का अंतर जान लीजिए।

4. मेरे विचार से कुंडलपुर क्षेत्र कमेटी ने यह कभी नहीं कहा कि नए मंदिर में नई मूर्ति विराजमान होगी और बड़े बाबा की मूर्ति यथास्थान बनी रहेगी। ऐसे निराधार भ्रमपूर्ण समाचार प्रचारित नहीं किए जाने चाहिए। यह तो सर्वविदित है कि नए भूकंपरोधी मंदिर का निर्माण भूगर्भवेत्ता विशेषज्ञों की राय के अनुसार केवल बड़े बाबा की मूर्ति की सुरक्षा के लिए ही प्रारंभ किया गया था। यदि बड़े बाबा की मूर्ति को पुराने स्थान पर रखा जाना उचित समझा जाता तो नए मंदिर के निर्माण का कोई औचित्य ही नहीं था।

5. भाई चवरे जी की यह शंका वस्तुस्थिति की जानकारी नहीं रहने से उत्पन्न हुई है। वस्तुतः बड़े बाबा की मूर्ति और मंदिर राष्ट्रीय स्मारक के रूप में केन्द्रीय पुरातत्त्व के संरक्षण में कभी घोषित नहीं किए गए। आज तक पुरातत्त्व विभाग ने सुरक्षा या देख-रेख के नाम पर एक पैसा भी खर्च नहीं किया। प्रारंभ से ही कुंडलपुर के मंदिरों, मूर्तियों की सुरक्षा दि. जैन समाज द्वारा गठित कमेटी करती आई है। बड़े बाबा के मंदिर के जीर्ण शिखर का जीर्णोद्धार श्री साहू शांतिप्रसाद जी ने कराया था। अभी भी मूर्ति की सुरक्षा के लिए ही समाज के द्वारा नवीन विशाल भूकंपरोधी मंदिर का निर्माण कराकर उसमें मूर्ति को सुरक्षित स्थापित किया गया है। यह पुरातत्त्व के नियमों के अंतर्गत है। नियमों के विपरीत कार्य नहीं किया गया है। किसी विधर्मी द्वारा द्वेषवश क्षेत्र को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा मंदिर मूर्ति को क्षति पहुँचाने में नियमों का भंग है और उसका सर्वदा विरोध किया जाना चाहिए। आश्चर्य है कि आप समझ-सोचकर सुरक्षा के लिए की गई तोड़-फोड़ और क्षति पहुँचाने के लिए की गई तोड़-फोड़ में अंतर नहीं कर पा रहे है। भूकंपग्रस्त मंदिर की जीर्ण दीवारों के भीतर विराजमान 1500 वर्ष प्राचीन जन जन की श्रद्धा का केन्द्र मूर्ति की सुरक्षा महत्त्वपूर्ण है या वे जीर्ण दीवारें ? उस महत्त्वपूर्ण मूर्ति की सुरक्षा के लिए उन दीवारों को क्षति भी पहुँचती हो, तो भी क्या हम मूर्ति की सुरक्षा के लिए वैसा नहीं करेंगे ?

6. गिरनार एवं खंडगिरि-उदयगिरि में किए जा रहे अतिक्रमण अजैनों के द्वारा जैनत्व के चिन्हों के विध्वंस के लिए किए जा रहे अतिक्रमण हैं। उनका सदैव विरोध किया जाना चाहिए। किंतु कुंडलपुर के तो पुराने जीर्णशीर्ण छोटे अँधेरे मंदिर में विराजित बड़े बाबा की अति प्राचीन अमूल्य धरोहर को आने वाले सैकड़ों वर्षों तक सुरक्षित करने एवं श्रद्धालु दर्शनार्थियों को सहज दर्शन उपलब्ध कराने के लिए विशाल मंदिर का निर्माण और मूर्ति का वहाँ स्थानांतरण वस्तुतः पुरातत्त्व की सुरक्षा का स्वयं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

7. दि. जैन समाज को अपने धर्मायतन, तीर्थक्षेत्र एवं मूर्तियों की दर्शनपूजा करने के लिए सुरक्षासँभाल स्वयं ही करनी चाहिए और प्रायः समाज ऐसा ही कर भी रही है। श्री शांतिनाथ भगवान के मंदिर को यदि पुरातत्त्व की लिस्ट से अलग कर दिया है, तो इसमें हमारा लाभ ही है हानि नहीं है। देलवाड़ा के श्वेताम्बर जैन मंदिर कला की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक स्मारक हैं। उनको श्वेताम्बर समाज ने पुरातत्त्व विभाग के बजाय अपनी ही सुरक्षा व्यवस्था में रखा हुआ है।

8. इस पैरा में लगता है, आपके मन में बैठा पक्षपात बोल रहा है। माननीय चवरे जी! इस प्रकार पक्षविमोह के वश निराधार बातें लिख कर समाज में क्षोभ उत्पन्न करने का प्रयास मत कीजिए। आम्नाय की बातें विद्वेषवश मत कीजिए। यदि आप निष्पक्ष होकर विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी करेंगे, तो पायेंगे कि तेरापंथ-बीसपंथ के पंथभेद बारहवीं शताब्दी के बाद की उपज हैं। पहले तो दिगम्बर जैनधर्म में वीतरागीदेव, वीतरागी दिगम्बर गुरु और वीतरागधर्म के प्ररूपक शास्त्र थे। बारहवीं शताब्दी से कुछ मुनियों में शिथिलता आई और उन्होंने वस्त्र का उपयोग करना प्रारंभ कर दिया। धीरे-धीरे जो मुनि वस्त्र धारण कर आरंभपरिग्रह धारण करने लगे, वे भट्टारक कहलाये। वे अनेक स्थानों पर गद्दियाँ स्थापित कर मठाधीश बन गए। इन्होंने मंदिरों की, धर्म की रक्षा भी की, किंतु धर्म की परंपरा को हानि भी पहुँचाई। नग्न होकर दीक्षा लेकर पीछी कमंडल लेने के पश्चात् समाज की प्रार्थना पर वस्त्र धारण कर गद्दी पर बैठ जाते। ऐसे आरंभ-परिग्रहवाले पीछी रखते हुए दिगम्बर मुनियों के समान अपनी विनय कराने लगे। दिगम्बर जैन धर्म के चरणानुयोग के शास्त्रों में भट्टारकों का कोई स्थान नहीं है। भट्टारकों ने श्रावकों को शास्त्रस्वाध्याय के द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं करने दिया और श्रावकों को सरागी देवदेवताओं की पूजा व मंत्रतंत्र में उलझा दिया। इन भट्टारकों ने बीसपंथ की स्थापना की। उस आचरण के शैथिल्य के विरोध में स्वाध्यायशील विद्वानों द्वारा तेरहपंथ की स्थापना की गई। दोनों पंथभेदों के पक्षव्यामोह से उपर उठकर हमें वीतराग दि. जैन धर्म एवं वीतरागी देवशास्त्रगुरु पर श्रद्धा रखनी चाहिए। आप किस प्रमाण के आधार पर कहते हैं कि कुंडलपुर का मंदिर बीसपंथी आम्नाय का मंदिर था। ऐसी निराधार असत्य बातों के प्रचार से समाज में कटुता बढ़ती है। कृपया समाज में पंथभेद का विद्वेष मत फैलाइए और ऐसी उत्तेजनात्मक बातों से समाज में अशांति उत्पन्न करने का प्रयास मत कीजिए। यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियाँ जो भी थीं, वे रहेंगी। मूर्तियाँ हटाने का झूँठा दुष्प्रचार कर आप समाज का कौनसा उपकार कर रहे हैं ?

9. प्राचीन मंदिरों के स्वरूप को नष्ट करना कभी भी उचित नहीं माना जा सकता। किंतु जो मंदिर जीर्णशीर्ण हो गया हो और जिसकी मरम्मत भी संभव नहीं हो वह तो गिरेगा ही। यहाँ बड़े बाबा की मूर्ति की सुरक्षा के लिए मंदिर की दीवारों को तोड़ना अनिवार्य था। क्या हमें उस दिन की प्रतीक्षा करना उचित था, जिस दिन मंदिर ध्वस्त होकर बड़े बाबा की प्राचीन मूर्ति को नष्ट कर देता।

10. यह कार्य मूर्ति की सुरक्षा का, तीर्थ की सुरक्षा का, तथा इस कारण धर्म की रक्षा का कार्य हुआ है। जिनके मन में विद्रोह की ज्वाला धधक रही हो, वे कैसे वीतरागी दिगम्बर मुनि या आचार्य हो सकते हैं ?

11. पक्षव्यामोह के कारण एवं गलतफहमियों के कारण आपकी लेखनी से निराधार बातें लिखी जा रही हैं। हमें पंथ की दुहाई देकर श्रद्धालुओं को भड़काने का अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए। अपने-अपने मंदिरों के व्यवस्थापक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने-अपने विवेक और श्रद्धा के अनुसार पूजापद्धतियों को अपनाने के लिए स्वतंत्र हैं। तथापि हमारे देव-गुरु की वीतरागता एवं दिगम्बरत्व अक्षुण्ण रहना चाहिए। उसके लिए भी श्रावकों में शास्त्राध्ययन की प्रवृत्ति बढ़ाने पर बल दिया जाना चाहिए।

12. दि. जैन आचार्यों, मुनिमहाराजों, विद्वानों एवं प्रबुद्ध श्रावकजनों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पंथभेद के आधार पर समाज में फूट का बीजारोपण न हो।

13. माननीय चवरे जी! कृपया इतिहास एवं आगम के आलोक में पहले यह निर्णय किया जाना चाहिए कि मूल आम्नाय क्या है और उस पर कौन प्रहार कर रहे हैं? सामाजिक सौहार्द, वात्सल्य एवं संगठन के वातावरण में इन बातों पर समताभाव से विचारविमर्श किया जा सकता है।

आपकी यह राय पूर्णत: सही है कि नए मंदिर के निर्माण की अपेक्षा पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार किया जाना श्रेष्ठ है। किंतु कुंडलपुर के बड़े बाबा के मंदिर की स्थिति सर्वथा भिन्न थी। उसके जीर्णोद्धार एवं विस्तार की अनेक योजनाएँ बनीं, किंतु सभी असंभव एवं अव्यवहार्य सिद्ध हुईं। सन् 1998 के लगभग तो भूगर्भवेत्ताओं की राय में वह बड़े बाबा के मंदिर के आस पास का पहाड़ी क्षेत्र भूकंप प्रभावित बताया गया। अनेक भूगर्भवेत्ताओं ने लिखित राय दी कि इस मंदिर के बड़े बाबा की मूर्ति असुरक्षित है और कभी भी उसे क्षति पहुँच सकती है। लंबे विचारविमर्श एवं विशेषज्ञों की राय के आधार पर भूकंपरोधी विशाल मंदिर के निर्माण का निर्णय लिया गया, जिसकी अनुमोदना दि. जैन समाज के लक्षाधिक समुदाय की उपस्थिति में जनसमुदाय द्वारा, भा. दि. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी द्वारा एवं अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् द्वारा फरवरी, 2001 में पंचकल्याणक के अवसर पर की गई। तब से निरंतर मंदिर निर्माण का कार्य अपनी गति से चल रहा है। मध्यप्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री सहित अनेक अधिकारियों ने एवं समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने समय-समय पर मंदिर निर्माण का निरीक्षण कर प्रसन्नता व्यक्त की।

माननीय चवरे जी! यह देखकर अत्यंत पीड़ा होती है कि आप जैसे प्रबुद्ध विचारक भी नवीन मंदिरनिर्माण की इस प्रभावक घटना को पंथभेद का जामा पहनाकर समाज को गुमराह करने का दुष्प्रयास कर रहे हैं! मैं चुनौती पूर्वक यह बात कहना चाहता हूँ कि प. पू. आचार्य विद्यासागर महाराज ने आज तक कभी भी अपने प्रवचनों, चर्चाओं अथवा क्रियाओं में पंथभेद का समर्थन नहीं किया। ये पंथभेद से ऊपर उठकर आगमपंथ के आलोक में जैनधर्म की सच्ची प्रभावना करनेवाले युगप्रवर्तक आचार्य हैं। उनकी आगमानुकूल चर्या और आगमानुकूल वाणी का ही यह चमत्कार है कि इस उपभोक्तावादी भौतिक युग में उच्च लौकिक शिक्षा प्राप्त युवक-युवतियों ने पूज्य आचार्यश्री से प्रभावित हो, बड़ी संख्या में संयम के सर्वोच्च पद को धारण किया है। आज आचार्यश्री के प्रति तेरा-बीस, दोनों पंथों के अनुयायियों की श्रद्धा केन्द्रित है। आचार्यश्री का कहना है कि पंथ में धर्म नहीं और धर्म में पंथ नहीं।

पू. आचार्य श्री का यह निर्देश है कि हम अपने तीर्थक्षेत्रों को पंथभेद की संकीर्णता से मुक्त रखते हुए दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र बने रहने देवें। हमारा कुंडलपुर तीर्थक्षेत्र भी एक दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र है। चवरे जी! तीर्थक्षेत्र पर कृपा कीजिए, बड़े बाबा पर कृपा कीजिए। अब तक इस तीर्थ पर पंथभेद के विवाद का प्रवेश नहीं हुआ है, आगे भी मत होने दीजिए।

मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

बोहरीबंद में श्री महावीर जयंती एवं कलश स्थापना समारोह सम्पन्न

श्री दिगम्बर जैन अतिशय तीर्थ क्षेत्र बहोरीबंद जिला कटनी में संतशिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज ससंघ (48 मुनि) विराजमान हैं। श्री भगवान् महावीर जयंती का भव्य विशाल आयोजन दिनांक 11 अप्रैल को किया गया। श्री जी की विमान जी में शोभायात्रा नगरभ्रमण कर वापिस पंडाल में पहुँची, जहाँ श्री जी के अभिषेक पूजन अर्चना के साथ आचार्य श्री के मांगलिक प्रवचन उपस्थित विशाल समुदाय ने सुने।

ग्रीष्मकालीन वाचना का कलश स्थापना समारोह इतवार दिनांक 16 अप्रैल 2006 को आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

सुरेश चंद जैन, मंत्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंडलपुर का करिश्मा

नजीर/ओमप्रकाश

पुरातत्त्व-संरक्षित मंदिर से बड़े बाबा की मूर्ति को निकालकर नए मंदिर में प्रतिष्ठित करना देश में एक नई बहस खड़ी कर गया है। यह कि पुराने, प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित धर्मस्थलों, सिद्धपीठों को पुरातत्त्व के हवाले काल के गाल में समा जाने के लिए छोड़ दिया जाए या जहाँ संभव हो, वहाँ समाज को उनके परिवर्तन, परिवर्धन और विकास के अधिकार दे दिए जाए।

सत्रह जनवरी को पुराने जीर्ण-शीर्ण मंदिर से १५०० साल पुरानी भगवान आदिनाथ की मूर्ति को छत हटाकर क्रेन से उठाने और उसे नए मंदिर में प्रतिष्ठित करने की घटना को जैन समाज ने चमत्कार में बदल दिया है - 'बड़े बाबा की प्रतिमा पुष्प की तरह भारहीन होकर आकाशमार्ग से नवनिर्माणाधीन विशाल और भव्य मंदिर के उच्चासन पर विराजमान हुई।' मूर्ति कोई फूल की तरह हल्की नहीं हुई, आकाशमार्ग से कोई उड़कर भी नहीं गई, पर जो हुआ है, वह किसी चमत्कार से कम नहीं है और केंद्र सरकार के लिए भी एक चेतावनी है कि 'तटस्थ कोई नहीं होता' और जो ज्यादा तटस्थ (निष्क्रिय) होता है, उसकी साँसत हमेशा बनी रहती है। देश की पहली, पर शायद आखिरी नहीं होगी, घटना है, जिसने पुरातत्त्व विभाग को यह सबक सिखाया है कि पुरा महत्त्व के पूजास्थलों के संरक्षण का अर्थ यह नहीं कि उन्हें खडंहर में बदलने, नष्ट होने के लिए छोड़ दिया जाए। जीवंत और जागृत देवस्थान, पर्यटकों और पुरातत्त्वविदों के लिए तो वस्तु और वास्तु हो सकते हैं, पर आस्थावान् समाज के लिए तो वे शक्तिस्थल हैं। इसलिए, अब नजीर बन गई है, तो यह सवाल बार-बार उठने वाला है कि शक्ति स्थलों को काल के गर्त में समा जाने के लिए छोड़ दिया जाए या कि समाज यदि चाहे, तो उसे संरक्षण, परिवर्धन, विस्तार और विकास के अधिकार दे दिए जाएँ। कान्हेरी केव्स की विरूपित मूर्तियों, साँची के स्तूपों में पड़ रही दरारों, भोजपुर मंदिर की गिरी हुई छत (पुरातत्त्व ने छत की जगह प्लास्टिक बिछाया है) को देखकर किन आँखों में आँसू नहीं आते। लाल किलों और राजमहलों को संरक्षित करने और मंदिरों को संरक्षित करने में फर्क है। कोई अचरज नहीं कि प्रशासन कुंडलपुर के 'ऑपरेशन मोक्ष' से इसलिए भी चिंतित है कि 100-125 कि.मी. दूर खजुराहो के मंदिरों के लिए भी कहीं कोई ऐसी ही माँग न उठ जाए। केंद्र सरकार से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक पहले से ही इसी से मिलते-जुलते एक मामले में हलाकान हैं। जैन समाज ने राज्य-दर-राज्य अपने को अल्पसंख्यक घोषित कराने की जो कोशिशें कीं, उनके पीछे का एक तर्क यही था कि अल्पसंख्यक की सुविधा मिल जाने से उनके लिए तीर्थों से अतिक्रमण हटवाना और उनका विकास करना आसान हो जाएगा। फिलहाल, ताकि सनद रहे, कुंडलपुर के 'ऑपरेशन मोक्ष' की अंदरूनी और संपूर्ण कथा ध्यान में रखने लायक है।

दमोह से लगभग 35 कि.मी. दूर कुंडल के आकार की पहाड़ियों के बीच कुंडलपुर में छोटे-बड़े ६४ जैन मंदिर अवस्थित हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध मंदिर, संभवतः छठी सदी में पहली बार बना, जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का है। मंदिर में लगभग 15 फुट ऊँची, 11 फुट चौड़ी, पद्मासन में बनी उनकी मूर्ति विराजमान रही है। परकोटे के बाहर अंतिम केवली श्रीधर स्वामी की निर्वाणस्थली भी है। १६५७ में पन्ना के हिन्दुत्व संरक्षक-शिवा को सराहो 'कि सराहो छत्रसाल को।' राजा छत्रसाल ने इसका जीर्णोद्धार कराया। १९९७-९८ में आए भूकम्प के झटके से मंदिर में दरारें पड़ गईं। १९७६ में पहली बार दर्शन करने आए आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने पहले ही इस सिद्धक्षेत्र को विकसित करने के लिए चुना था। भूकम्प से मंदिर में बन आई दरारों ने उन्हें और भी कृत-संकल्पित किया। 'पुरातत्त्व विभाग को पुरातत्त्व की चिंता है, हमें पूरे तत्त्व की', उन्होंने यह चिंता जताई। विचार दिया कि क्षतिग्रस्त मंदिर के गिरने पर मूर्ति भी क्षतिग्रस्त हो सकती है, इसलिए नया मंदिर बनाकर मूर्ति उसमें प्रतिष्ठित की जानी चाहिए। भूकम्प के बाद पुरातत्त्व विभाग के सर्वे में भी यह बात आई कि मंदिर के ७० खंभों में से १९ अपनी जगह छोड़ चुके हैं, मंदिर ८० फीसदी जर्जर है, इसलिए या तो मूर्ति वहाँ से निकाल ली जाए या मंदिर को ठीक किया जाए या फिर नया मंदिर बनाया जाए।

१९१३ में पुरातत्त्व विभाग ने इन मंदिरों को संरक्षित घोषित किया था। पर संरक्षण की हालत यह रही है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंडलपुर हिन्दुओं का भी सिद्धक्षेत्र है। अंबिकादेवी (तकरीबन ११वीं सदी) और रुक्मिणी के भी यहाँ मंदिर हैं। लगभग ५ साल पहले अंबिकादेवी की मूर्ति चुरा ली गई थी। बाद में मिली तो पुरातत्त्व विभाग ने कलेक्टर से कहा कि वे संरक्षण का जिम्मा लें, तो मूर्ति फिर से मंदिर में स्थापित की जाए। कलेक्टर ने जिम्मा लेने से मना कर दिया, तो मूर्ति तब से ग्यारसपुर (विदिशा) के संग्रहालय में रखी है। १९१३ की पुरातत्त्व की अधिसूचना में यहाँ विष्णु मठ भी बताया गया है, अब उसका कोई नामोनिशान नहीं है।

१९९९ में जैन समाज ने पुराने मंदिर की बगल में नया मंदिर बनाने की तैयारी की। पहाड़ी पर एक लाख पाँच हजार वर्गफुट जमीन समतल की गई। पहाड़ी रेतीली है, भूकम्प का असर न हो, नया मंदिर १०००-१२०० साल सुरक्षित रहे, इसके लिए ३८७ गहरे गड्ढे खोदकर वहाँ हजारों बोरी सीमेंट डाली गई। दिल्ली में अक्षरधाम बनाने वाले वास्तुशास्त्री सीबी सोमपुरा को मंदिर शिल्प की जिम्मेदारी सौंपी गई। पुरातत्त्व ने कभी हाँ कहा, कभी न, पर २००० तक नींव डालने का यह काम पूरा हो गया। मंदिर निर्माण के पहले समाज की सहमति बन जाए, इसके लिए २१ से २७ फरवरी २००१ को कुंडलपुर महोत्सव किया गया। महामस्तकाभिषेक का ऐसा समाँ बँधा कि देश और प्रदेश के कई बड़े नेता भी उसमें आए। महोत्सव की सफलता ने १०-१२ करोड़ की शुरूआती योजना को ५० करोड़ तक पहुँचा दिया। मंदिर एक मंजिला से दोमंजिला प्रस्तावित हुआ। २००१ से लगातार कार्य चला है। अब मंदिर ३५ फुट ऊँचा बन चुका है।

पुराने मंदिर से निकालकर मूर्ति को नए मंदिर में प्रतिष्ठित करने की बारी आई, तो पता तो पहले से ही था कि पुरातत्त्व विभाग इसकी इजाजत नहीं देगा, इसलिए सावधानी से, 'ऑपरेशन मोक्ष' योजना बनाई गई। इसके लिए सवा पाँच करोड़ जाप के आह्वान के साथ श्रद्धालुओं को कुंडलपुर बुलाया गया। १४ जनवरी तक वहाँ तीस हजार श्रद्धालु पहुँच गए।

प्रशासन को ५ जनवरी को इत्तला दे दी गई थी कि समाज पुराने मंदिर से मूर्ति को नए मंदिर में स्थानांतरित करना चाहता है। प्रशासन में हलचल हुई, पर वह सवा पाँच करोड़ जाप के लिए वहाँ आ रहे लोगों को नहीं रोक सकता था। १५ जनवरी की शाम कलेक्टर ने पहाड़ी पर पुलिस चौकी कायम करनी चाही, तो श्रद्धालुओं के रेले ने उन्हें पहाड़ी से नीचे उतार दिया। पहाड़ी की चारों ओर से नाकेबंदी कर दी गई। ऊपर जाने के जो भी रास्ते थे, वहाँ कुल मिलाकर ४० चेक पोस्ट बना दिए गए। हर एक पर मुनि, साध्वियाँ और श्रद्धालु औरतें-बच्चे रास्ता बंद करके खड़े हो गए।

पुराने मंदिर के गर्भगृह में मुश्किल से २५ लोगों के खड़े होने की जगह थी। मंदिर की छत हटाने, बलुआ पत्थर से बनी मूर्ति को छत के रास्ते बाहर निकालने के लिए जयपुर की एक संगमरमर खदान में २०० लड़कों को प्रशिक्षित किया गया था। दो बड़ी क्रेनें लाकर कटनी रखी गईं, फिर कम प्रयुक्त रास्तों से लाकर उन्हें पहले ही पहाड़ी पर चढ़ा लिया गया था। सारा ऑपरेशन आईआईटी के दो इंजीनियरों की निगरानी में हो रहा था। कोई दुर्घटना हो, तो पहाड़ी पर इलाज के लिए एक छोटा ऑपरेशन थिएटर भी बनाया गया था। पुराने मंदिर से मूर्ति निकालेंगे तो नीचे के रक्षक देव (साँप) निकल सकते हैं (६ जोड़े निकले), उन्हें पकड़ने के लिए सपेरे तक बुलाकर मौजूद रखे गए थे।

१५ की शाम पहाड़ी के नीचे २००० पुलिस मौजूद थी। कलेक्टर ने भोपाल से, लाठीचार्ज करके ऊपर जाने की इजाजत माँगी। कहा कि मूर्ति हटा रहे हैं। उधर से पूछा कि इस अपराध की सजा क्या है ? बताया गया -3000 रूपये या तीन महीने की कैद। भोपाल ने जवाब दिया कि इतने से अपराध के लिए लाठी-चार्ज की इजाजत नहीं दी जायेगी। पुलिस पहाड़ी घेरे रही। श्रद्धालु और मुनि उसी तरह नाकेबंदी किए खड़े रहे। नीचे कुछ पता नहीं ऊपर क्या, कब, कैसे हो रहा है। १६ की सुबह साढ़े चार बजे ईंट-ईंट निकालकर पुराने मंदिर की छत हटाने का काम शुरू हुआ। १७ की सवेरे मूर्ति बाहर निकाल ली गई और दोपहर बाद २ बजकर ३६ मिनट पर नए मंदिर में प्रतिस्थापित कर दी गई। १६ को पुरातत्त्व विभाग जबलपुर हाईकोर्ट गया। दिन में तीन बार सुनवाई हुई। फिर १७ को दोपहर २ बजे के लिए टली। १७ को २ बजे सरकारी वकील ने बताया कि इस बीच मूर्ति स्थानांतरित हो गई है। पुरातत्त्व के वकील ने बताया कि मूर्ति स्थानांनतरित नहीं हुई है। ४.३० बजे अदालत ने आदेश पारित कियाा कि मूर्ति की बाबद यथास्थिति बनाए रखी जाए। मूर्ति तो २.३६ पर नए मंदिर में प्रतिस्थापित भी की जा चुकी थी। सो, अब यथास्थिति यह है कि मूर्ति नए मंदिर में पूजा-अर्चना के साथ विराजमान है। १९ जनवरी को उसका पहला महामस्तकाभिषेक भी हो चुका है।

(लेखक 'नई दुनिया', इंदौर के स्थानीय संपादक हैं)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरावैभव के सच्चे रक्षक

डॉ. स्नेहरानी जैन, सागर

समूचा भारत विश्व के सामने अपने ''पुरा'' वैभव के लिए एक विशाल ''खान'' है। विदेशों में प्राचीनता के नाम पर जो कुछ भी देखने में आता है, भारतीय उससे इसलिए विशेष प्रभावित नहीं दिखते कि विश्व की सबसे प्राचीन 'मानव-सभ्यता' की पुरा वस्तुयें भारत में जहाँ-तहाँ यात्रियों को सहज ही देखने को मिल जाती है।

जहाँ भी खुदाई होती है, कुछ न कुछ रहस्यमय 'जिनधर्म के अवशेष' दिखाई पड़ ही जाते हैं। म्यूजियम भी उन 'जैन अवशेषों' को सहेजने का स्थान नहीं बना पाते हैं और बागों में बिम्बों को पड़ा रख छोड़ते हैं अथवा यदि साधन मिला तो स्थापित करा देते हैं। कितनी ही 'जिन-मूर्तियाँ' नदियों की रेत में दबीं, और जंगलों में खड़ीं, कभी सड़क की खुदाई से निकली और कभी चोरों की गिरफ्त से बचाई गई सुनने में आती हैं। उतनी ही मूर्तियाँ विदेशों में प्राचीनता सँजोए शौकीन लोगो के ड्राँइंग रूमों की सज्जा बनी देखी जा सकती हैं।

सन् 1999 में मैं जर्मनी की यात्रा पर जब विशेष खोज अभियान पर निकली थी, तब मैंने देखा कि हमारी मूर्तियाँ मंदिरों से उठकर किस प्रकार विदेशियों के हाथ लगीं, ठीक पांडुलिपियों की तरह हमारी ही अपनी अज्ञानता के कारण। सैलानी आए और उनके सहज ठिकानों से उन्हें ले गए।

ईजिप्त की 'ममी' की तरह भारत के 'जिनों' ने विदेशी संग्रहालयों में अपना विशेष महत्त्व बनाया है। तिस पर भी सिंधु-घाटी सभ्यता की सीलों में झाँकती जिन-मुद्राएँ पुरातत्त्वज्ञों के लिए अजूबा बनी रही हैं। जितनी भी 'पुरा सामग्री' है, उतने ही भिन्न-भिन्न 'पुरा अंकन', फिर भी उनके अंदर से झाँकती + चतुर्गति और स्वस्तिक 卐, चाँद और सूरज, बैल और दिगम्बर मुद्राएँ। मुहरों पर उकरे चित्र पहचाने न जा सके। आश्चर्य है कि चक्र और पशु बौद्ध संकेत पुकारे गए, किंतु उनका अस्तित्व जैन आधार पर नहीं समझा जा सका। बोधिगया के मंदिर के स्तूपों की तरह उन्हें प्राचीन तो आँका गया पर खंडित सहस्त्रकूटों के टुकड़े ना दिखे, जिन्हें तोड़कर बौद्ध स्तूपों की रचना की गई। सभी प्रसिद्ध पुरातत्त्व हैं।

पुरातत्त्व के विषय में लोगों में बेहद भ्रामक मान्यताएँ चल रही हैं। इससे भारतीय नेता और विद्वान तो ग्रसित हैं ही, हमारे न्यायविद् भी अंधेरे में जी रहे हैं। तब एक ही कहावत याद आती है- ''अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके से खाजा।''

जिस बावरी मस्जिद को लेकर भारत में इतना तूफान उठा कि ''वह रामलला की जन्मस्थली थी'' किसी नेता ने एक बार भी न सोचा कि वह ''राम से पूर्व ऋषभ की जन्मस्थली और जैनियों का महातीर्थ है,'' कि अब भी वहाँ कोनेवाली मस्जिद आज भी अपने कोने में जैन मंदिर को रौंदे खड़ी है। जितने भी प्राचीन तीर्थ थे, मूलतः वे सब जैनियों के ही थे। प्रथम उन्हें बौद्धों ने फिर कुछ को शंकराचार्य ने और बाद में मुगलों ने और ईसाई धर्मावलंबियों ने हथिया लिया। आज भी प्रजातंत्र पर कलंक बनी गुजरात सरकार ने गिरनार की जैन टोंकों पर आतंकवादी पंडे बिठाल कर उनके सुपुर्द करा दिया है। ये प्रजातंत्र की आड़ में गहरा कुचक्र और अन्याय है।

ऐसा लगता है कि बड़ी सुनियोजित योजना बनाकर जैन तीर्थों को हड़पने का अभियान बहुसंख्यक समुदाय की शासन-प्रणाली ने ठान लिया है। सारे ही जैनतीर्थ प्राचीन होने के कारण पुरातत्त्व के कब्जे में पहले से ही कर लिए गए हैं, किंतु इसका यह मतलब तो कदापि नहीं होना चाहिए कि जैनों को उनके पूजन, दर्शन और धार्मिक अधिकारों से उनके ही तीर्थ स्थानों पर वंचित किया जावे। उनके तीर्थों के मूलनायकों को विद्रूप और नष्ट कर दिया जावे, जैसा कि गिरनार पर, केशरियाजी में, खण्डगिरि में और अंजनेरी में किया गया है। जिसे भी उन बिम्बों को पूजना हो, अवश्य पूजें, किंतु उन क्षेत्रों का अधिकार मूल (दिगंबर) जैनों के हाथ में दिया जावे और मूर्ति को उसके मूलस्वरूप में ही पूजा जावे। अन्यथा इस वर्तमान में चल रही अराजक स्थिति को प्रजातंत्र कहलाने का अधिकार नहीं है।

बुंदेलखण्ड के क्षेत्र भी अति प्राचीन क्षेत्र हैं, जिन पर पुरातत्त्व की 'शनिदृष्टि' पड़ी है। देवगढ़ के पुरातत्त्व को खंडहर बनाकर मंदिर में पुलिस रह रही थी। वो तो अत्यंत सराहनीय रहा कि पू. आचार्य विद्यासागर जी एवं बाद में मुनि श्री सुधासागर जी ने वहाँ चातुर्मास करके उस क्षेत्र को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवजीवन दे दिया। आहार, पपौरा भी उसी कोटि के जर्जर क्षेत्र थे, जिन्हें धर्मसेवियों ने बड़ी मेहनत और लगन से पुनः साँसें दीं।

कुंडलपुर का तीर्थक्षेत्र पहाड़ियों पर खड़े जर्जर मंदिरों में चरमराता पड़ा था। आचार्य और साधुगण तीर्थयात्रियों की तरह वहाँ जाते, कुछ दिन रुकते और आगे बढ़ जाते थे। इन पिछले २८-३० वर्षों में दिगंबराचार्य विद्यासागरजी के चरण वहाँ पड़ने से और चातुर्मासों के कारण भारत के कोने-कोने से ही नहीं, विदेशों से भी भक्तों ने आकर उनसे कर्तव्य प्रेरणा पाकर इस क्षेत्र की दशा सुधारी। जब भी जिस मंदिर के लिए आवश्यकता लगी जीर्णोद्धार हुआ। किंतु पुराने वस्त्र में जिस प्रकार रफू और थिगड़ों की एक सीमा होती है और उसे त्याग नया वस्त्र लेना ही पड़ता है, ठीक उसी प्रकार पिछले भूकंप के झटकों में सर्वप्रसिद्ध सर्वप्रिय 'बड़े बाबा' के मंदिर में भी दरारें बढ़ने लगी थीं। छोटी बड़ी १३ दरारों से भय लगने लगा था कि कभी वह मंदिर अगले भूकंप से धराशायी होकर पुनः अपनी १५०० वर्ष पूर्व वाली 'टीला' स्थिति में न पहुँच जाए। भक्तों का ऐसा भय स्वाभाविक था क्योंकि वह 'बड़े बाबा' अत्यंत अतिशयी हैं और अनेक बार अपने सातिशयी होने का प्रमाण दे चुके हैं।

उस मंदिर का छोटा-मोटा जीर्णोद्धार तो चलता ही रहता था, किंतु १५०० वर्ष पूर्व (उसके टीला बनने के बाद) नए मंदिरनिर्माण के बाद भी उसमें जीर्णोद्धार होने का वर्णन लिखित पाया गया था। उस सातिशयी प्रतिमा की सुरक्षा अत्यंत आवश्यक थी, परंतु वह कैसे संभव हो सकेगी, यही भय सबको घेरे था। बड़े बाबा तो जहाँ जम गए, सो कोई उन्हें हिला ना सका। फिर अब कैसे रक्षा होगी? कुण्डलपुर का क्षेत्र भी तो पुरातत्त्व के संरक्षण में था। किंतु पुरातत्त्व विभाग की ओर से न तो कोई रखरखाव था न ही कोई फिकर।

जैन कला और स्थापत्य के प्रथम भाग के १६ वें अध्याय में एएसआई द्वारा प्रदर्शित कुंडलपुर का 'बड़े बाबा' वाला मूल मंदिर दर्शाया गया है, जो कभी इस प्रकार छोटा-सा था। बाद में इसे वर्तमान रूप दिया गया होगा। उस छोटे-से मंदिर में अनेक मूर्तियों को दीवालों में जड़ा गया था, जिसके ३ चित्र श्री नीरज जैन ने कुंडलपुर संबंधी दर्शाए हैं। उस समय तक 'बड़े बाबा' को किसी ने विशेष महत्ता नहीं दी थी। श्री कृष्णदेव ने बड़े बाबा-संबंधी मात्र तीन लकीरें लिखीं थीं। उन्होंने बड़े हिचकते हुए मात्र साधारण सूचना दी थी। जिस प्रकार जेम्स फर्ग्यूसन ओर जेम्स बर्गेस ने धाराशिव गुफाओं को ६वीं शती का बताकर अपनी अज्ञानता का परिचय दिया है (जबकि गुफा नं. २/३ के प्रमुख द्वार पर सिंधुघाटी लिपि के तीन अक्षर बार-बार दिखते हैं) उसी प्रकार बड़े बाबा को ५ वीं ६वीं शती का बताने वालों ने भी अपनी बुद्धि में भ्रमविशेष का परिचय दिया है। १५०० वर्ष पूर्व बड़े बाबा एक टीले में दबे पड़े थे अर्थात् उस टीले से पूर्व वे किसी मंदिर में विराजित रहे होंगे ही, जो किसी 'प्राकृत' आपदा के कारण ढह कर टीला बन गया और बड़े बाबा उसमें दब गए होंगे। उनकी प्रामाणिकता का रहस्य वे और उनको उस काल में पूजनेवाले कदाचित् जो उस आपदा से बचे होंगे, वही जानते होंगे। वह टीला मोहनजोदड़ो हड़प्पा की तरह कितने काल तक सोया पड़ा रहा, कोई कह भी नहीं सकता था। वह तो धन्य हुआ पटेरा का वह गाड़ीवाला बाबा जिसने ठोकर खाने पर उन्हें गाड़ी पर लाकर वहीं उस पहाड़ी पर पलटकर देखा (किंवदन्ती), अन्यथा 'बड़े-बाबा' कहीं और होते। कहा जाता है कि वह भी उसी समय 'मर' गया। अर्थात् 'बड़े-बाबा' पर्वत पर पहुँच तो गए, किंतु उनका मंदिर तो बाद में समाज ने बनाया। परम्परानुसार तब मंदिर बन जाने पर भगवान की पूजा हेतु पंचकल्याणक हुआ होगा। तब उस मूर्ति को सूर्यमंत्रित करने से पूर्व कदाचित् हाथ और वक्ष कलात्मक किए गए दीखते हैं। फलस्वरूप पैरों की स्थूलता की तुलना में हाथ दुबले, नाजुक और वक्ष भी कलात्मक झलक दर्शाता है। चेहरा और पैर अछूते छोड़ दिए गए।

ध्यान से देखने पर वह 'बड़े-बाबा' आदिनाथ का बिंब है। उनके बाल घुंघराले, केशगुच्छ इथियोपियन, ठोड़ी ईजिप्शियन, कान श्रीलंकन और दृष्टि भारतीय है। मुस्कराहट जिनश्रमण की और मुद्रा दिगम्बरत्व में ध्यानस्थ है। फिर भी श्री कृष्णदेव जैसे पुरातत्त्वज्ञ ने उन्हें अनदेखा करते हुए उनकी स्थूलता को उपेक्षित कर दिया। तीन पंक्तियों के वर्णन और चार चित्रों में उन्होंने कुण्डलपुर का संपूर्ण वैभव समेटकर अपनी पुरातत्त्वीय जिम्मेदारियों का निर्वाह कर दिया। खंडहर बन वह 'बड़े-बाबा' का मंदिर और सातिशयी 'बड़े-बाबा' समाज की ओर निहारते किसी भूकंप अथवा किसी उद्धारक की राह देख रहे थे।

आचार्य विद्यासागर जी के चातुर्मास से दिगम्बर समाज को साहस मिला और उसमें विचारविमर्श हुआ। भारत का विशाल दिगम्बर तेरहपंथी समाज मूर्ति की सुरक्षा हेतु उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ से सुरक्षित नए आयतन में विराजे जाने का पक्षधर था। किंतु 'खर्च' समस्या था। जन-जन ने उसमें योगदान देकर प्रथम सिंहद्वार के निर्माण द्वारा उस पहाड़ी पर विशाल मंदिर के निर्माण और वजन लेने की क्षमता निर्मित की। जिन व्यक्तियों का मन पूछे न जाने के कारण आहत हुआ, आर्थिक सहयोग की तो बातें दूर, मीनमेख निकालते हुए उन्होंने पहले तो यही शंका दर्शाई कि जो मूर्ति अपने अतिशय से पूर्व में स्थान पकड़ कर बैठ गई, वह भला अब कैसे हटेगी ? कई गंभीर संकट उपजे, किंतु संपूर्ण समाज को संतों की तपस्या के तेज का पता था। पत्थर के देवता, तीर्थंकर सम तपस्वी के आगे भला कैसे हठ रखते ? सब आश्चर्यचकित थे कि 'वह मूर्ति कैसे अपना स्थान बदलेगी ?' पैसा बरस रहा था भक्तों की ओर से और मंदिरनिर्माण की सामग्री जुट रही थी। फिर भी एक विरोधीदल बन गया। प्रथम तो ''अतिशय के नष्ट होने की दुहाई देता'' फिर ''मंदिर के पुरातत्त्व की दुहाई देता।'' सिंह द्वार बन गया, तो खर्च की गई राशि भी बातों का विषय बन गई। कुछ काल बाद कानूनन रोक लगाने की धमकी भी पर्चों द्वारा सुनने में आई।

उस समय मैं अपने रोग की गंभीरता से जीवन और मौत के बीच जूझ रही थी। मैंने भी इसी भावना से चाहा था कि 'बड़े-बाबा' अपने सुरक्षित आयतन में पहुँचकर भक्तों को दर्शन दें। अत: अपनी बीमारी का हवाला देते हुए विरोधियों से प्रार्थना की कि वे बाधा न डालकर 'बड़े-बाबा' की सुरक्षा में सहयोग करें, ताकि मंदिर का निर्माण हो। 'बड़े-बाबा' अपना वहाँ नया आसन ले लें और मुझ जैसे मरणासन्न भक्त उन्हें पूजकर, दर्शन करके उनके अतिशय का लाभ पा सकें। मैं 'बड़े-बाबा' से भी प्रार्थना करती थी कि ''प्रभु अपना अतिशय दिखाओ और उड़कर अपने नए स्थान पर जा विराजो।''

मैं कुण्डलपुर जाकर गुरुचरणों में रहने लगी। आश्चर्य है कि धीरे-धीरे मुझमें ताकत आ गई और मैं सहज ही 'बड़े-बाबा' के दर्शन करने रोज ऊपर पर्वत पर पैदल जाने लगी।

फिर भी उम्मीदें लगाए ६ वर्ष बीत गए। लगता था कि जाने कब तक हमें प्रतीक्षा करनी होगी कि बड़े बाबा अपने उस जर्जर खण्हर से उड़कर बाहर आएँगे। आएँगे भी कि वहीं धरती में छुप जाएँगे, १५०० वर्ष पूर्व की भाँति। संभवत: तब पुरातत्त्व विभाग उन्हें किन्हीं तालिबानी पंडों को सौंप गिरनार की भाँति जैनों से छीन दत्तात्रेय घोषित करके सुरक्षित कर लेगा अथवा खण्डगिरि के पार्श्वनाथ की तरह अंगिया-फरिया पहनवा कर पंडों का आवास बनवा देगा अथवा कोलुहा के पार्श्वनाथ की तरह उन्हें भैरव घोषित करके उन पर बकरों की बलि दिलवाएगा। वोटनीति से ग्रसित सरकारें पता नहीं कैसे करवटें बदलेंगी। तपस्वियों के तप से बड़े बाबा प्रसन्न हो उठे।और ''सपना'' साकार हुआ। लाखों भक्तों की पुकार के आगे गिने चुने लोकैषणाग्रस्त विरोधियों की सारी चालों को नकारती बड़े बाबा की मूर्ति अपने संपूर्ण वैभव के साथ अपने नए आसन पर खुले प्रांगण में विराजित हो गई। मैंने सुना तो भागकर, जाकर देखा, मुस्कुराते बड़े बाबा अपने आसन पर खुले, बिना किसी सहारे के बैठे उसी तप की उद्घोषणा कर रहे हैं, जो उन्होंने कर्म युग के आरंभ में की थी। भक्तों का ताँता नहीं टूट रहा था। दिनरात भक्त उनकी छाँव में बैठे पूजन भक्ति कर रहे थे। ५८ दीक्षार्थिनियों ने उनके चरणों में दीक्षा ली और उनके इंगित पथ पर बढ़ गयीं। सातिशयी भगवान् का अतिशय था कि कहीं खरोंच भी उन पर न लगी, फिर भी दुराग्रही अखबारों में भ्रामक प्रचार छाप कर शांत वातावरण में विघ्न डालने की कुटिलता करते रहे। उनका पूर्वाग्रह था कि २५० वर्ष प्राचीन पुरातत्त्व को नष्ट कर दिया गया है। अज्ञानियों को २५० वर्ष प्राचीन खण्डहर, सैंधवयुगीन बड़े बाबा के पुरातत्त्व से अधिक कीमती लग रहा था। स्वयं को वकील और पुरातत्त्वज्ञ समझनेवाले वे यह भी नहीं समझे कि वे कितना गलत और धर्मविरोधी कार्य कर रहे हैं कि जर्जर मंदिर की सुरक्षा चाहते हैं।

सही है एक सीमा तक तो हम अपने पुराने वस्त्र सहेज सकते हैं, सिल सकते हैं, थिगड़े लगा सकते हैं, किंतु अंतत: हम नये कपड़े सिलवाते ही हैं। उस जर्जर मंदिर को जिसमें ३ बार जीर्णोद्धार हो चुका और जो १३ दरारें सहेजे जर्जर हो चुका था, धाराशिव गुफाओं की तरह कितना सहेजेंगे। हमें नया आयतन बनाना आवश्यक था। कार्य में बाधा डालकर जिस-जिस भी विघ्नकारी ने बड़े बाबा के मंदिर को बनने से रोका है, जैन कर्मसिद्धांत के अनुसार उसने स्वयं के अनेक भवों के लिए छप्पर खोया है। कितने ही सल्लेखी उन बड़े-बाबा के चरणों में पहुँचकर अपनी अंतिम साँसें सार्थक कर रहे हैं। मैंने उनके दर्शन करके स्वयं को धन्य पाया। धन्य हैं वे सब, जिन्होंने 'बड़े-बाबा' के इस पूर्व-ऋग्वैदिक पुरालिपि अंकित बिंब की सुरक्षार्थ नया आयतन बनाकर, बनवाकर, अनुमोदना कर हमारी इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौरवशाली निधि को जर्जर खंडित मंदिर से उबार लिया। उस मंदिर का मलबा ही बतलाता है कि एक ही पत्थर की मार 'बड़े बाबा' की काय शिला को नष्ट करने में सक्षम थी। ईंटों से बने मंदिर से कदाचित् ऐसा संभव ना होता, किंतु लातूरी पत्थरों से चूने की दरार खाई चुनाई एक भूकंप के धक्के को नहीं झेल पाती।

बड़े बाबा पर अंकित अक्षर दर्शाते हैं कि शाकाहार स्वीकारी एक छत्रधारी (राजा) ने जिनवाणी सुनकर 'बड़े बाबा' के दर्शन किए और भवचक्र से पार उतरने वैभव को त्यागकर महाव्रत की पीछी लेने इच्छानिरोध का पुरुषार्थ किया और मुनिसंघ के चरणों में पहुँच वैराग्य धारा। पुनः आगे चार शुक्लध्यानों की प्राप्ति हेतु उसने पंचपरमेष्ठी की शरण ली और शिखर पर्वत के ऊपर जा विराजा।

इतना ही नहीं बड़े बाबा की ही तरह उद्घोषणा करती मुझे तीन जिनमूर्तियाँ मुक्तागिरि में, एक हैदराबाद तथा एक पटना में मिली हैं।

वे सब पद्मासनस्थ जिन हैं। पाषाण में हैं और सिंधुलिपि उनके पैरों पर अंकित हैं। मात्र एक के पादपीठ पर भाला बना है, जो इच्छानिरोधी स्वसंयम का सैंधव प्रतीक है। इनके विषय में सचित्र जानकारी अगले पत्र में दूँगी। उससे पहले उन्हें पेपर के रूप में इतिहास कांफ्रेंस में प्रस्तुत करूँगी। पुरातत्त्व हमारी पूज्य मूर्तियों में है, मंदिरों में नहीं, क्योंकि उनका जीर्णोद्धार होता आया है। गुफाओं का जीर्णोद्धार मूल गुफा सहेज सके, उतना श्रेयस्कर है। जब 'बिम्ब' ही क्षरण हो रहे हों, तब उनकी सुरक्षा बावनगजा और देवगढ़ की खंडित मूर्तियों के जीर्णोद्धार की तरह की जाना भी श्रेयस्कर है। हमारे पुराप्रेमियों को चाहिए कि अपनी शक्ति का सदुपयोग बड़े बाबा की जगह गिरनार की मूर्तियों और खण्डगिरि की मूर्तियों की सुरक्षा में करें, कोलुहा के पार्श्वनाथ और केशरिया जी के काले बाबा के लिए करें। वहाँ अपनी उपस्थिति लाखों में दिखलाएँ और जन-जन को उनकी सुरक्षा में प्रेरित करें। बड़े बाबा खंडहर से उबर चुके हैं, अब मंदिर की पूर्णता में तन-मन-धन से संपूर्ण सहयोग करें। व्यर्थ ही अपने पूर्वाग्रह में न धँसे रहें। अपनी गलती को सुधारकर सच्चे जिनभक्त बनें, 'मानभक्त' नहीं।

'जैन गजट' 9 मार्च 2006 से साभार

भगवान् शीतलनाथ जी

जम्बूद्वीप संबंधी भरत क्षेत्र के मलय नामक देश में भद्रपुर (भद्दलपुर) नगर के स्वामी इक्ष्वाकुवंशी राजा दृढ़रथ राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम सुनन्दा था। माघकृष्ण द्वादशी के दिन माता सुनन्दा ने आरण स्वर्ग के इन्द्र को तीर्थंकर सुत के रूप में जन्म दिया। भगवान् पुष्पदन्त के मोक्ष चले जाने के बाद नौ करोड़ सागर का अन्तर बीत जाने पर भगवान् शीतलनाथ का जन्म हुआ। उनकी आयु भी इसी में सम्मिलित थी। उनके जन्म लेने के पहले पल्य के चौथाई भाग तक चतुर्विध संघ रूप धर्म संतति का विच्छेद रहा था। भगवान् के शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान थी, आयु एक लाख पूर्व की थी और शरीर नब्बे धनुष ऊँचा था। जब आयु के चतुर्थ भाग के प्रमाण कुमारकाल व्यतीत हो गया तब उन्होंने अपने पिता का पद प्राप्त कर भली-भाँति प्रजा का पालन किया। भगवान् शीतलनाथ किसी समय वन-विहार के लिए गये। वहाँ उन्होंने देखा कि पाले का समूह जो क्षण भर पहले समस्त पदार्थों को ढके हुए था शीघ्र ही नष्ट हो गया है। प्रकृति का यह परिवर्तन देखकर उन्हें आत्मज्ञान हो गया। संसार से विरक्त होकर उन्होंने माघकृष्ण द्वादशी के दिन सायंकाल के समय सहेतुक वन में बेला का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ संयम धारण किया। पारणा के दिन भगवान् अरिष्ट नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ सुवर्ण के समान कान्ति वाले पुनर्वसु राजा ने उन्हें खीर का आहार देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। तदनन्तर छद्मस्थ अवस्था के तीन वर्ष बिताकर वे मुनिराज एक दिन बिल्व वृक्ष के नीचे बेला का नियम लेकर विराजमान हुए। ध्यान की विशुद्धि बढने से पौषकृष्ण चतुर्दशी के दिन सायंकाल के समय उन भगवान् ने घातिया कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान् के समवशरण की रचना हुई जिसमें एक लाख मुनि, तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकायें, दो लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। अनेक देशों में विहार कर धर्मोपदेश देते हुए वे भगवान् सम्मेदशिखर पर पहुँचे। वहाँ एक माह का योग-निरोध कर उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया तथा एक हजार मुनियों के साथ आश्विन शुक्ला अष्टमी के दिन सायंकाल के समय अघातिया कर्मों का क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया।

मुनि श्री समतासागरकृत 'शलाका पुरुष' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डलपुर के बडे बाबा का मूल स्थान यह नहीं है, न मूलवेदी और न मूलनायक-प्रतिमा

ब्र. अमरचंद जैन

दिगम्बरपरम्परा में तीर्थंकर आदि के चरित्र के तथ्यों का प्राचीन संकलन हमें प्राकृत भाषा के 'तिलोयपण्णति' ग्रन्थ में मिलता है। ईस्वी संवत् से कई शताब्दी पूर्व भारतवासियों की जनभाषा प्राकृतभाषा रही है। उस समय जैनाचार्यों की तत्त्वदेशना प्राकृत में ही हुआ करती थी । आगमग्रन्थ इसी प्राकृतभाषा में लिखे गयें हैं

मनुष्य के विभिन्न अनुभवों में सबसे अधिक प्रभावशाली उन पुरुषों के चरित्र सिद्ध हुए हैं, जिन्होंने लोककल्याण का कुछ विशेष कार्य किया, चाहे वह संकट से मुक्तिसंबंधी हो या भौतिक या आध्यात्मिक उत्कर्ष के रूप में। राष्ट्र के कुछ महापुरुषों के चरित्र, क्षेत्र एवं काल की सीमा को पार कर व्यापकरूप से लोकरुचि के विषय बन गये हैं। राम और कृष्ण के चरित्र इसी प्रकार के हैं। वैदिकपरम्परा में रामायण-महाभारत विविध साहित्यिक धाराओं के स्रोत सिद्ध हुए हैं, वैसे ही जैन साहित्य में पद्मपुराण या पद्मचरित्र और हरिवंशपुराण या अरिष्टनेमिचरित्र भी सिद्ध हुए हैं। हमारा प्रयोजन विशेषत: हरिवंशसंबंधी कथानक से है।

जैनहरिवंशपुराण में यादवकुल और उसमें उत्पन्न हुए दो शलाकापुरुषों का चरित्र विशेषरूप से वर्णित हुआ है। एक बाईसवें तीर्थंकर नेमीनाथ और दूसरे नवें नारायण कृष्ण, ये दोनो चचेरे भाई थे । एक ने अपने विवाह के अवसर पर निमित्त पाकर संन्यास ले लिया और दूसरे ने कौरवपांडवयुद्ध में अपना बल-कौशल दिखाया । एक ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का आदर्श उपस्थित किया और दूसरे ने भौतिक लीला का। एक ने निवृत्ति-परायणता का मार्ग प्रशस्त किया और दूसरे ने प्रवृत्ति का। इसी प्रसंग में हरिवंशपुराण में महाभारत का कथानक सम्मिलित पाया जाता है। हरिवंशपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन पुन्नाट संघ (पुन्नाट कर्नाटक का प्राचीन नाम था) के थे । इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण था। उन्होंने यह रचना शकसंवत् ७०५ (वि. सं. ८४०) में समाप्त की थी। उस पुरानी बात को पुराण कहते हैं, जो महापुरुषों के विषय में कही जाती है या महान् आचार्यों द्वारा उपदेश के रूप में बतलायी जाती है अथवा महाकल्याण का अनुशासन करती है। ऋषिप्रणीत होने से पुराण ''आर्ष'' कहलाता है। 'इति ह आस' अर्थात् 'ऐसी बात हुई थी', इस प्रकार श्रुति का वचन होने से उसे इतिहास कहना भी इष्ट है । इसे आम्नाय कहने की भी प्रथा है । अत: जो इतिहास है, वह श्रुतपरम्परा से वर्णित है। जैनआम्नाय में ये गुरुशिष्यपरम्परा से चलते रहे हैं। उन्हीं के पश्चात् जैनपुराण रचे गये। उनमें ईसापूर्व ५२७ में अंतिम तीर्थंकर महावीर के निर्वाण तक त्रेसठ शलाकापुरुषों का विवरण दिया गया है, इतिहासकाल से वैदिक एवं श्रमण परंपराएँ क्षेत्र व काल की दृष्टि से साथ-साथ विकसित होती आई हैं।

आइये, अब हम अपने विषय की परिपुष्टि के लिए उपर्युक्त संदर्भ में हरिवंशकथा का उल्लेख करते हैं। हरिवंशपुराण (स्व. डॉ. पन्नालाल जी द्वारा अनुवादित-प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ) के पृष्ठ नं ५०९ पर वर्णन है कि सत्यभामा के व्यवहार से कुपित होकर नारद आकाशमार्ग से उस कुण्डिनपुर जा पहुँचे, जहाँ शत्रुओं के लिए भयंकर महाकुलीन राजा भीष्म रहते थे। उनकी नीति और पौरुष को पुष्ट करने वाला रुक्मी नाम का पुत्र था एवं कला और गुणों में निपुण रुक्मिणी नाम की शुभ कन्या थी। अवधिज्ञान के धारक अतिमुक्तक मुनि ने रुक्मिणि को देखकर कहा था - ''कृष्ण के अंत:पुर में सोलह हजार रानियाँ होंगी। उन सब में यह प्रभुत्व को प्राप्त होगी, उन सब में प्रधान बनेगी।'' (पृष्ठ ५०८)

जैन और हिन्दू पुराणों के अनुसार रुक्मिणी के भाई राजकुमार रुक्म ने अपनी बहिन का विवाहसम्बन्ध चेदि-नरेश शिशुपाल से तय कर दिया था। अपने अपमान का बदला लेने नारद ने श्री कृष्ण को रुक्मिणी के चित्र द्वारा उसके प्रति मोहित कर दिया एवं कृष्ण ने स्वयं रुक्मिणी को वरण करने की ठान ली। रुक्मिणी ने कृष्ण के चित्र को देखकर अपने मन में कृष्ण को प्रियतम के रूप में विराजमान कर लिया। पत्र द्वारा रुक्मिणि ने कृष्ण जी को द्वारका संदेश भेजकर बुलाया। कृष्ण चेदिनरेश शिशुपाल के साथ विवाह की तिथि पर कुण्डलपुर के उद्यान में उपस्थित होकर पूर्व निश्चित स्थान से रुक्मिणि को हरकर ले गये और गिरनार पर्वत पर विवाह सम्पन्न किया तथा रास्ते में जाते समय शिशुपाल की सेना पर विजय प्राप्त कर निश्चिन्त हुए। यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथानक जैन व हिन्दू पुराणों में मूलतः मिलता है। (श्रीमद्भागवत/सुखसागर बाबनवाँ अध्याय/रुक्मिणि पेज नं. ७०३ से ७१३)।

भीष्म को विदर्भ देश का राजा कहा गया है। अतः कुण्डनपुर ग्राम विदर्भ में होना बताया गया है, किन्तु हरिवंश पुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि कुण्डनपुर में राजा भीष्म रहते थे। (आदिपुराण प्रथम भाग (ज्ञानपीठ प्रकाशन) पेज नं ५ प्रस्तावना)। विदर्भ का आधुनिक नाम बरार है। इसकी प्राचीन राजधानी विदर्भपुर (वीदर) अथवा कुंडिनपुर थी। चेदिनरेश की राजधानी चंदेरी (बुंदेलखंड) में थी। राजनीतिक दृष्टिकोण से राजधानियाँ समय-समय पर बदलती रहती हैं। इस बात का क्या प्रमाण है कि विदर्भ में रुक्मिणी का जन्म हुआ था और वहीं विवाह भी ? राजधानियाँ बदलना कोई नई बात नहीं थीं। अतः रुक्मिणीहरण कुण्डनपुर दमोह या कुण्डलगिरी पर्वत की तलहटी स्थित रुक्मिणीमठ से हुआ था, ऐसी मेरी मान्यता साधार है। ऐसा भी लिखा गया है कि राजा भीष्म कुंडिनपुर में प्रजा का पालन करते थे। भौतिक दृष्टि से चंदेरी और विदर्भ में कथित कुण्डिनपुर में बहुत दूरी है। अतः रुक्मिणी के भाई रुक्मि ने सशक्त चेदिनरेश से अपने मधुर संबंध स्थापित करने के लिये बहिन रुक्मिणी का संबंध यहाँ निश्चित किया था, जो बुंदेलखंड में ही था- अतः आधुनिक यही ग्राम कुण्डलपुर-श्रीधर केवली की निर्वाण कुण्डलगिरी-इसके पास रुक्मिणीमठ तथा ४ किलोमीटर दूर वर्रट पुराना नाम विराटनगर में तथा आसपास कँवरपुर - रनेह आदि जो सम्पन्न तथा विशाल विराटनगर की सीमा थे। जहाँ बड़े-बड़े विशाल जैन मंदिर थे, जिनके अवशेष एवं मूर्तियाँ आज भी पाई जाती हैं। (देखिये प्राचीनतीर्थ जीर्णोद्धार पत्रिका मार्च-अप्रैल २००४ पेज नं. ३१)। ग्राम रनेह में तीर्थंकरों की पाषाण प्रतिमाएँ सुरक्षा के अभाव में यत्र-तत्र पड़ी हैं। (देखिये गवर्नमेंट गजट आफ इंडिया - म. प्र. दमोह जिला)। बड़े बाबा की मूर्ति बहुत पहिले वर्राट के जीर्ण शीर्ण जैन मंदिर से यहाँ लाई गयी थी। खण्डहर हो गये मंदिरों से प्रतिमाएँ लाई गयी थीं। इस बात के आज भी पर्याप्त प्रमाण हैं कि न केवल बड़े बाबा की मूर्ति, बल्कि पार्श्वनाथ भगवान् की दोनों मूर्तियाँ एवं गर्भगृह में चिपकाई गयी, शिलाओं पर उकेरी तीर्थंकरों की मूर्ति, शिल्पावशेष-स्तंभ, सब इन्हीं उपनगरों से लाये गये तथा मंदिरों के निर्माण कार्य में उपयोग किये गये। ध्वस्त मंदिरों के अवशेष इतनी अधिक मात्रा में बिखरे पड़े थे कि ठेकेदारों ने इन्हीं शिल्पाशेषों को गिट्टी बनाकर सड़क बनाने के उपयोग में लिया था।

गर्वनमेण्ट गजट के अनुसार मंदिर के परिसर में एक ऊँचे चबूतरे पर लगभग 0.152 मीटर लम्बे तथा छतरी से ढँके हुये दो पद चिन्ह हैं। चबूतरे के अधोभाग से प्राप्त कुण्डलगिरि के श्रीधरस्वामी के शिलालेख से इस विश्वास को बल प्राप्त हुआ है कि श्रीधरकेवली जो अंतिम अननुबुद्ध केवली थे, ईसापूर्व पाँचवी शताब्दी में हुए थे, उन्हें कुण्डलपुर मूलतः कुण्डलगिरी में निर्वाण प्राप्त हुआ था। इस तथ्य का उल्लेख कि श्रीधर स्वामी को कुण्डलगिरि में निर्वाण प्राप्त हुआ ,यति-वृषभ द्वारा रचित प्राचीन प्राकृत ग्रंथ तिलोयपण्णत्ती में मिलता है।

कुण्डलगिरी के निर्वाण क्षेत्र होने का उल्लेख ईसा-पश्चात् पाँचवी या छठी शताब्दी के स्वामी पूज्यपाद द्वारा रचित दशभक्ति तथा प्राकृत निव्यूहकन्दम में मिलता है। यदि हमारा कुण्डलपुर ही प्राचीन कुण्डलगिरि है, तो यह जैनियों का एक सर्वाधिक प्राचीन तथा पवित्र निर्वाण क्षेत्रों में से एक है। उक्त गजट के अनुसार भी कुण्डलपुर में श्रीधरकेवली के चरण चिन्ह/छतरी ईसापूर्व पाँचवी शताब्दी की है। भगवान महावीर के निर्वाण के १०० वर्ष के भीतर श्रीधरकेवली को निर्वाण प्राप्त हुआ था, सो यह हमारे ग्रंथों से भी प्रमाणित है।

आइये, अब हम ''बड़े बाबा'' की मूर्ति की प्राचीनता की बात करें। भगवान नेमीनाथ के काल में महाभारत के प्रमुख श्री श्रीकृष्ण की कथा, रुक्मिणी के हरण का विस्तृत वृतांत, जैन पुराणों एवं वैष्णवपुराणों में मिलता है। अतः घटनाओं के अनुसार रुक्मिणि का जन्म विराटनगर (आधुनिक नाम वर्राट, जो कुण्डलगिरी से 4 कि.मी. है) में हुआ था, न कि विदर्भ में। तथा रुक्मिणिमठ/मंदिर कुण्डगिरि की तलहटी तथा विराटनगर के उद्यान में स्थित है, जहाँ से रुक्मिणि का हरण हुआ था। ये मंदिर उद्यान में स्थित थे, जहाँ से कुण्डलगिरि के भी ध्वस्त मंदिर के शिल्पावशेष और मूर्तियाँ आईं थीं। गजट के अनुसार इस मंदिर के परिसर के कुँवरपुर ग्राम से लाई गई 3 विशालकाय जैन प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। इसके निकट स्थित रुक्मिणिमठ तथा वर्राट आदि स्थानों में भी कुछ जैन मंदिर हैं, जो अब पूरी तरह खण्डहर हो चुके हैं। इन स्थानों की सुन्दर प्राचीन प्रतिमाएँ काफी अरसे पहिले वहाँ से लाकर कुण्डलपुर के मंदिर में प्रतिष्ठित कर दी गई थीं, कुछ मूर्तियाँ जो 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और उनके यक्ष तथा यक्षणी आदि की हैं, अभी भी रुक्मिणिमठ में ही हैं। यह कहा जाता है कि ऋषभनाथ की प्रतिमा भी बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहिले वर्राट के जीर्ण-शीर्ण जैन मंदिर से यहाँ लाई गई थीं। (रुक्मिणीमठ पुरातत्त्व विभाग से संरक्षित है, पर वहाँ से मूर्तियाँ चोरी चली गईं)।

यहाँ यह बात गौर करने लायक है कि आज हम पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों तथा सरकारी गजटों का उल्लेख कर इतिहाप्रसिद्ध घटनाओं की सच्चाई कहते हैं, प्रमाणित मानते हैं। यह भी सच है कि इन रिपोर्टों का तथा गजटों में प्रकाशित तथ्यों का आधार (जैसा कि ऊपर कहा गया है), हमारे जैनग्रंथ हैं, जनश्रुतियाँ हैं, जो प्रकारांतर से श्रुतपरम्परा से जुड़ी हैं।

अपने अतीत को श्रवण और स्मरण के आधार पर याद रखते आने की परम्परा प्राय: विश्व के प्रत्येक सभ्य कहे जाने वाले देश में रही है। भारतवर्ष में भी इन आख्यानों का विपुल भंडार है, जिसे एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को धरोहर के रूप में सौंपती रही है। इसी कड़ी में ''पटेरा के ग्रामीण व्यापारी को सपना आना तथा बैलगाड़ी द्वारा बड़े बाबा की मूर्ति को पटेरा ले जाना, पर्वत पर एक स्थान पर ठहर जाना'' ऐसी भारतवर्ष में अनेकानेक घटनाएँ है, चाँदखेड़ी की इतिहास प्रसिद्ध घटना, आदिनाथ भगवान का जंगल से आकर (बैलगाड़ी में) रूपाली नदी के तट पर ठहर जाना और वहीं मंदिर बनाना जहाँ कभी चन्द्रप्रभु भगवान का ध्वस्त मंदिर था। तथा वे तथ्य भी घटनानुसार हमारे सामने हैं, अत: इससे कभी इन्कार नहीं किया जा सकता कि ''बड़े बाबा'' अन्यत्र से आकर (वर्राट) उसके आसपास-रुक्मिणीमठ, कुँवरपुर, रनेह आदि स्थानों में तथा मंदिर में आकर स्थापित हुए थे। यह प्रथम स्थानान्तर बड़े बाबा का कुण्डलगिरि पर था।

मंदिर की संरचना तथा अब जब बड़े बाबा के सुरक्षित सुदृढ़ मंदिर में दूसरे स्थानांतर के बाद यह सच भी सामने आया है कि ''बड़े बाबा एक पत्थर की शिला में उत्कीर्ण हैं'' शासन देव-देवियाँ तथा इन्द्रादि अलग-अलग शिलाओं में उत्कीर्ण हैं तथा यथास्थान दीवाल पर चिपकाये गये हैं, सिंहासन के चार भाग (दो नहीं है) हैं। पार्श्वनाथ भगवान की दोनों तरफ की मूर्तियाँ भी अलग पाषाण खंडों में उत्कीर्ण होकर बड़े बाबा के दाएँ बाएँ और दीवालों पर चिपकाई गयी थीं। तथा अन्य 3 तरफ की दीवालों पर भी शिलाओं पर उत्कीर्ण तीर्थंकर प्रतिमाएँ, जहाँ जितना स्थान मिला बाहर से लाकर चिपका दी गईं। इतनी मूर्तियाँ और शिल्पावशेष आसपास के जैन मंदिरों के खण्डहरों से लाये गये थे जो ऊपर पर्वत के अन्य मंदिरों में रखे गये थे तथा नीचे तलहटी के मंदिरों में भी मूर्तियाँ समोशरण (चौमुखी) पधराईं गयीं। सैकड़ों स्तंभ तथा अन्य शिलाएँ अभी भी पड़ी हैं, तथा काम में लायी गयी हैं।

इसके अतिरिक्त तलहटी में वैष्णवमंदिर में (सपाट छतवाला रुक्मिणीमठ जैसा, ऐसा ही सपाट छत का मंदिर नोहटा में भी है, वहाँ भी जैन मूर्तियाँ तथा मंदिर के अवशेष पाये गये हैं, यह एक शोध का विषय है) भगवान आदिनाथ की यक्षिणी अम्बिका की प्राय 4' की सुन्दर मूर्ति वहाँ स्थापित कर पूजी जा रही है/थी। अभी हाल में पुरातत्त्व विभाग द्वारा संरक्षित इस तलहटी के मंदिर से यह मूर्ति चोरी चली गई थी, यह सतर्कता व सुरक्षण दिया हमारे पुरातत्त्व विभाग ने मंदिरों को ?

और भी जैसा कि गजट में उल्लेख है कि रुक्मिणिमठ से भी मूर्तियाँ, शिला एवं यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमाएँ चोरी चली गई हैं, वहाँ अब पत्थर के ढेर मात्र बचे हैं, यह हालात है पुरातत्त्व के संरक्षित स्थानों का। कौन अधर्मी होगा जो मंदिरों, मूर्तियों को इनके संरक्षण में छोड़ेगा, अपने पूज्य भगवान को इन्हें सौंप, निश्चिंत हो सो सकेगा। हमने हजारों वर्षों से इनकी पूजा की है, रक्षित किया, जीर्णोद्धार किया, स्थानान्तर किया, नवीन निर्माण किया है एवं उनकी पूज्यता अक्षुण्ण रखने के लिए आज भी हम कटिबद्ध हैं। इसलिए कि वे हमारी आस्था के प्रतीक हैं, पूज्य हैं, हमारे जीवन से भी मूल्यवान हैं। अत: हम क्या नौकरशाही से प्रणीत पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण को स्वीकार करके ये अनर्थ देखते रहेंगे? कभी नहीं। हमें अपने धर्मस्थानों का पूज्य भगवंतों की पूजा-वंदना करने का मौलिक अधिकार है, इसमें किसी का दखल वांछनीय नही हैं, भले हम अल्पसंख्यक हैं, पर हम अपनी पहिचान अपनी आस्था के केन्द्रों को सुरक्षा-प्रबंध एवं स्थायित्व प्रदान करने में सक्षम हैं। चाहे जो भी शासन रहा हो, यह हमारा इतिहास है। वर्तमान में यही सत्य है और भविष्य में भी यही सच्चाई रहेगी।

बड़े बाबा की मूर्ति की प्राचीनता में अब संदेह नहीं, इसका काल निश्चित ही ईसापूर्व पाँचवी-छठवीं शताब्दी है। श्रीधर केवली के चरण-चिन्हों की छतरी के पास मूर्ति का ठहरना पाँचवीं शती ईसापूर्व का संकेत करती है, क्योंकि वह विराटनगरादि के ध्वस्त मंदिर से कुण्डलगिरी जाने बैलगाड़ी पर स्वप्न के अनुसार आई थी, अत: पार्श्वनाथ भगवान के समय या उनके पूर्व की प्रतिमा है। यह ध्वस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंदिर, टीला के रूप में कुण्डलगिरि पर न मालूम कब से अब तक स्थित था, पर इतिहास के माध्यम से 300 वर्ष पूर्व का कथानक ही हमारा प्रत्यक्ष सूत्र है, जब नेमिचंद्र ब्रह्मचारी ने इसका उद्धार कराया तथा छत्रसाल ने अपनी मनौती के तहत मंदिर एवं तालाब का पुनः निर्माणादि कराया था और उस अवसर पर माघ सुदी 5 सन् 1700 से यहाँ मेला भी लगता है। अतः यह सिद्ध है कि कुण्डलपुर स्थित बड़े बाबा का मूल स्थान यह नहीं है, न मूलवेदी और न मूलनायक प्रतिमा।

अठारवीं शताब्दी के पुरातत्त्ववेत्ताओं और गर्वनमेंट द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में इसे 22 वें तीर्थंकर नेमीनाथ की प्रतिमा माना है। यह स्वाभाविक लगता है, क्योंकि महाभारत-कालीननगर, विराटनगर, रुक्मिणिमठ, यहाँ से कृष्ण द्वारा रुक्मिणि का हरण, उस समय के लोकगीत तथा जनश्रुति यही प्रमाण मूर्ति को नेमीनाथ की मूर्ति कहते थे। श्रीधर केवली की कुण्डलगिरि पर स्थापित चरण छतरी, कुण्डलगिरि पर बड़े बाबा का स्थिर हो जाना अतिशय का विषय है।

कल तक हमारे भाइयों तथा पुरातत्त्व में रुचि रखनेवाले लोगों का कहना था कि बड़े बाबा को स्थानांतरित करने में खतरा है, अतः इस पुरा (पुराना) तत्त्व (मूर्ति) का संरक्षण करना आवश्यक है, अतः मूल स्थान पर ही स्थापित रखना चाहिये। मंदिर पूजा-अर्चना करने के स्थान हैं, अतः जब मूर्ति का अस्तित्व ही खतरे में हो तो ? मैं अपने मकान में सैकड़ों साल से रह रहा हूँ, अब वह जर्जर हो गया है, किसी भी समय गिर सकता है, तो मैं अपना जीवन बचाने उस घर को छोड़ दूँ, या उसमें रहा आऊँ ? हमारे निवास एवं सुरक्षा हेतु बनाया मकान हमसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण या कीमती है? यह विचार करें। पाँच छह साल से बड़े बाबा मात्र गर्भगृह में अवस्थित थे, जो एक बड़ी मोटी आर पार चट्टान के आधार पर शिखर समेत बना था। विशेषज्ञों की राय में यह निर्माण भूकंप के छोटे से धक्के से धराशायी हो सकता था, क्योंकि इसका आधार भी एक पूरी चट्टान है। अतः मूल (तत्त्व) की रक्षा तथा इस अतिशयकारी, प्राचीन मूर्ति के लिये आज के आधुनिक साधनों द्वारा पूर्ण सुरक्षित एवं विस्तृत स्थान पर आगे आनेवाले सैकड़ों वर्षों तक करोड़ों भक्तों को पूजन-अर्चन का सौभाग्य प्राप्त कराना पुरातत्त्व का विनाश है या विकास ? यह (पुरा) तत्त्व का जीर्णोद्धार है।

जिनदेव के भक्त ही इस सोच को पुण्यबन्ध का कारण मान सकते हैं। आज 90 प्रतिशत विरोध पुरातत्त्व के नष्ट होने की शंका के कारण है। यह विरोध समाप्त हो जाना चाहिये। ''बड़े बाबा'' के स्थानांतरित मंदिर का त्वरित निर्माण कर भव्य एवं अतिशययुक्त विशाल बिम्ब के दर्शन भक्तों को उपलब्ध कराने का ही उपक्रम करना श्रेष्ठ है।

श्री दि. जैन महावीर आश्रम,
कुण्डलपुर

डॉ. दम्पती को रइधू-पुरस्कार

फिरोजाबाद। सुप्रसिद्ध लेखक जैन दम्पति डॉ. कपूरचन्द जैन और डॉ. ज्योति जैन, खतौली को विशाल जनसभा में रइधू पुरस्कार से सम्मानित किया गया। समारोह की अध्यक्षता उ. प्र. विधान सभा के उपाध्यक्ष श्री राजेश अग्रवाल ने की। विशिष्ट अतिथि पूर्व पालिकाध्यक्ष श्री मनीष असीजा थे। श्री राजेश अग्रवाल ने लेखकदम्पती के ग्रन्थ 'स्वतन्त्रता संग्राम में जैन' की विशेष रूप से चर्चा करते हुए कहा कि नई पीढ़ी को यह इतिहास बताना जरूरी है, ताकि वे स्वतन्त्रता के महत्त्व को समझ सकें और देश के लिए मर-मिटने को तैयार रहें। संयोजक प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी ने पुरस्कार की पृष्ठभूमि बताते हुए कहा कि जैनदर्शन के तलस्पर्शी विद्वान् तथा जिनवाणी प्रचार-प्रसार के लिए सदैव तत्पर रहने वाले पं. श्याम सुन्दर लाल जी ने 'श्री श्याम सुन्दर लाल शास्त्री श्रुतप्रभावक न्यास' की स्थापना की थी जिससे प्रति वर्ष इक्कीस हजार रूपये का पुरस्कार लेखक के समग्र व्यक्तित्व पर दिया जाता है। संचालक श्री अनूपचन्द एडवोकेट ने जैन दम्पत्ति का परिचय देते हुए कहा कि इस दम्पत्ति ने अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए 'स्वतन्त्रता संग्राम में जैन' जैसी अमूल्य कृति दी है। डॉ. कपूरचन्द जैन और डॉ. ज्योति जैन ने इस सम्मान प्राप्ति पर श्रुत प्रभावक न्यास का आभार माना और पुरस्कार धनराशि सर्वोदय फाउण्डेशन को भेंट कर दी। इस अवसर पर 'स्वतन्त्रता संग्राम में जैन' (प्रथम खण्ड) के द्वितीय संस्करण की प्रतियाँ फिरोजाबाद के विशिष्ट महानुभावों को लेखक ने अपने हस्ताक्षर कर भेंट कीं।

अनूपचन्द जैन एडवोकेट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़े बाबा की प्रतिमा का संस्थाापन

सुरेश जैन, आई.ए.एस. (से. नि.)

पूज्य आचार्य विद्यासागरजी महाराज के आध्यात्मिक नेतृत्व में उनके संघ की दृढ़ इच्छाशक्ति एवं कुण्डलपुर क्षेत्र के पदाधिकारियों के सतत परिश्रम के परिणामस्वरूप कुण्डलपुर में भगवान आदिनाथ (बड़े बाबा) की प्रतिमा निर्माणाधीन विशाल मंदिर में स्थापित की जा चुकी है। छोटे बाबा ने इस विशाल मूर्ति को नया जीवन प्रदान किया है। मंदिर का निर्माण पूर्ण होने पर यह मूर्ति अद्‌भुत आनंद प्रदान करेगी किन्तु मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के स्थगन आदेश के कारण मंदिर निर्माण का कार्य रुक गया है।

भारत सरकार और राज्य सरकार के पुरातत्त्व-संरक्षण-अधिनियमों की मंशा के अनुरूप ही आचार्यश्री का प्रमुख उद्देश्य मूर्ति का संरक्षण ही है। संरक्षण की संकुचित वैधानिक व्याख्या को विस्तार देते हुए जैन समाज द्वारा नवीन मंदिर की आधारभूति को भूकंप के प्रभाव से बचाने के लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टि से सुदृढ़ किया गया है। भारत सरकार ने अपनी संरक्षित नीति के अनुसार महाराष्ट्र में स्थित अजंता-ऐलोरा गुफाओं का सरंक्षण एवं सौन्दर्यीकरण किया है। मध्यप्रदेश में स्थित भोजपुर शिवमंदिर का पुनर्निर्माण किया है। ओंकारेश्वर में स्थित 24 अवतार के विष्णुमंदिर को 3 किलोमीटर दूर स्थानांतरित कर संरक्षित किया है। दिल्ली में स्थित हुमायु के मकबरा का संरक्षण किया है। इसी प्रकार के अनेक पूर्वोदाहरणों के अनुरूप कुण्डलपुर-जैनतीर्थ के पदाधिकारियों द्वारा बड़े बाबा की मूर्ति को निकटस्थ उपयुक्त स्थल पर संस्थापित किया गया है। तीर्थक्षेत्र के पर्यावरण को संरक्षित एवं विकसित किया गया है। नवीन मंदिर में स्थापित करने से मूर्ति के सौन्दर्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अत: अब इतनी बड़ी प्राचीन मूर्ति को ग्रीष्म, शीत एवं वर्षा से बचाने के लिए हमारा सम्पूर्ण जैन समाज संगठित रूप से यथाशीघ्र मंदिर पूर्ण करने के लिए ठोस प्रयत्न करे। अनावश्यक एवं अनुपयुक्त टीका टिप्पणियों को विराम देकर अपनी रचनात्मक एकता का परिचय दे।

बड़े बाबा की यह विशाल मूर्ति अब विश्व की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर बन गई है। अब यह मूर्ति भूकंप, ग्रीष्म और शीत ऋतु के विपरीत प्रभावों को सहस्त्रों वर्षों तक सफलतापूर्वक झेल सकेगी और हमारी शताधिक पीढ़ियों को अक्षुण्ण रूप से उपलब्ध रह सकेगी।

एनशियेन्ट मान्यूमेंट एक्ट 1904 के जनक वायसराय लार्ड कर्जन ने बीसवीं शताब्दी के प्रवेश पर हमारे देश की पुरातत्त्व संपदा के वैज्ञानिक संरक्षण की प्रक्रिया का श्रीगणेश करते हुए कहा था कि "सुन्दरता के मंदिरों के दर्शनार्थियों की हैसियत से मैं उनमें गया हूँ।" साथ ही उन्होंने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि "क्या कर्म के मंदिर के पुजारी के रूप में मैने उनके संरक्षण और उनके पुनर्निर्माण के लिए कुछ किया ?" हमें यह उल्लेख करते हुए प्रसन्नता होती है कि इक्कीसवीं शताब्दी के मंगलप्रवेश के अवसर पर कर्मवीर बनकर पूज्य विद्यासागर जी ने अपनी असाधारण शक्ति और साहस का उद्‌घाटन किया है और मूर्ति के सफलतापूर्वक संस्थापन द्वारा इस प्रश्न का उपयुक्त एवं प्रभावी उत्तर दिया है। हमें विश्वास है कि भारत सरकार और राज्य सरकार उनके इस कर्म से ओतप्रोत उत्तर का सम्मान करेंगी।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा मध्यप्रदेश में स्थित खजुराहो के मंदिरों और मूर्तियों एवं साँची के स्तूपों को विश्व धरोहर की सूची मे सम्मिलित करा लिया गया है। भोपाल के समीप स्थित भीमबैठका और भोजपुर को इस सूची में सम्मिलित कराया जा रहा है। मैं सम्पूर्ण जैन समाज से विनम्र आग्रह करता हूँ कि हम मिल जुलकर बड़े बाबा की मूर्ति जैसी अपनी सभी महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक धरोहर को यूनाइटेड नेशंस एजूकेशनल सोसल एन्ड कल्चरल आर्गेनाइजेशन (यूनेस्को) द्वारा तैयार की जा रही विश्व धरोहर की सूची मे सम्मिलित कराने के लिए आगे बढ़ कर ठोस प्रयत्न करें। बड़े बाबा के नवीन मंदिर को दिल्ली के अक्षरधाम में स्थित स्वामीनारायण मंदिर की भाँति आधुनिकतम तकनीकों और प्रक्रियाओं से सुसज्जित करें और कम से कम राष्ट्रीय स्तर के आकर्षक पर्यटनकेन्द्र के रूप में सुविकसित करें। समीपस्थ वन्य क्षेत्र में जीव-जंतुओं और वनस्पतियों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करें और तीर्थंकरवन विकसित करें।

भगवान महावीर ने छब्बीस सौ वर्ष पूर्व इकोलॉजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के वर्तमान सिद्धान्तों के अनुरूप जीव जन्तुओं को उनके प्राकृतिक पर्यावास में रखने की दृष्टि से मोटे दोहरे कपड़े से पानी छानने और कपड़े में आयी जीवराशि को जल के तल तक करुणापूर्वक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हमें दिया है। आज भी अनेक जैन घरों में इस सिद्धान्त का नियमित पालन किया जाता है। इस लेखक के प्रयास से 1980 के दशक में विश्वस्तरीय संस्थाओं ने कपड़े से पानी छानने की प्रक्रिया अपनाने के लिए अनेक परिपत्र विश्व के सभी राष्ट्रों को प्रेषित किए हैं। यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि हम बड़े बाबा के मंदिर-परिसर में वैज्ञानिक ढंग से पानी छानने की प्रक्रिया एवं इसके आधारभूत सिद्धांत एवं जैनभोजन और उसके प्रभावों का मल्टी मीडिया के माध्यम से प्रस्तुतीकरण करें।

इक्कीसवीं शताब्दी ज्ञान की शताब्दी है। इस शताब्दी में किसी भी व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की पहचान ज्ञान से होती है। समय की आवश्यकता के अनुरूप यदि हमने अत्याधुनिक शिक्षा को अपनी समाज के अंतिम पंक्ति के अंतिम सदस्य तक नहीं पहुँचाया, तो हम पिछड़ जावेंगे। कृषियुग में केवल भूमि, पूँजी एवं श्रम की आवश्यकता होती थी, किन्तु सूचना की आगामी शताब्दी मे इन तीनों से अधिक ज्ञान की आवश्कता होगी। ज्ञान-विशेषज्ञ, ज्ञानवान् कर्ता एवं ज्ञानवान् व्यक्ति ही हमारे समाज की महत्त्वपूर्ण पूँजी होंगे। ज्ञानवान् समाज ही प्रगति के सर्वोच्च सोपान पर स्थित होगा। अत: मेरा विनम्र निवेदन है कि हम इसी प्रकार की दृढ़ इच्छा शक्ति, संपूर्ण समर्पण और तन, मन, धन से यह सुनिश्चित करें कि हमारे समाज के प्रत्येक पुत्र और पुत्री को राष्ट्रीय स्तर के उत्कृष्टतम शिक्षाकेन्द्रों मे सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आवश्यक साधन और सुविधाएँ प्राप्त हों, जिससे वे अपना शैक्षणिक लक्ष्य प्राप्त कर सकें और अपनी, अपने परिवार और अपनी समाज की चतुर्मुखी प्रगति कर सकें।

30, निशात कालोनी, भोपाल

भगवान् श्रेयोनाथ जी

जम्बूद्वीप संबंधी भरत क्षेत्र के सिंहपुर नगर के स्वामी इक्ष्वाकु वंश में प्रसिद्ध विष्णु नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम सुनन्दा था। महारानी सुनन्दा ने फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन पुष्पोत्तर विमानवासी अच्युतेन्द्र को तीर्थंकरसुत के रूप में जन्म दिया। शीतलनाथ भगवान् के मोक्ष जाने के बाद जब सौ सागर और छयासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर प्रमाण अन्तराल बीत गया तथा आधे पल्य तक धर्म की परम्परा विच्छिन्न रही, तब भगवान् श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ था। उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल थी, उनकी कुल आयु चौरासी लाख वर्ष की थी। शरीर सुवर्ण के समान कान्ति वाला था तथा शरीर की ऊँचाई अस्सी धनुष थी। जब उनकी कुमारावस्था के इक्कीस लाख वर्ष बीत चुके तब भगवान् ने राज्य पद प्राप्त किया। प्रजापाल बनकर न्याय नीति पूर्वक ब्यालीस लाख वर्ष तक उन्होंने राज्य किया। तदनन्तर किसी एक समय वसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर उन्हें वैराग्य हुआ जिससे उन्होंने अपने श्रेयस्कर पुत्र के लिए राज्य देकर बेला का नियम लेकर फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन प्रात: काल एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। पारणा के दिन उन्होंने सिद्धार्थ नगर में प्रवेश किया। वहाँ सुवर्ण के समान कान्ति वाले नन्द राजा ने भक्तिपूर्वक आहार देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। इस प्रकार छद्मस्थ अवस्था के दो वर्ष बीत जाने पर एक दिन महामुनि श्रेयांसनाथ मनोहर नामक उद्यान में बेला का नियम लेकर तुम्बुर वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए। वहीं पर उन्हें माघकृष्ण अमावस्या के दिन सायंकाल के समय घातिया कर्म के नष्ट हो जाने पर केवलज्ञान प्राप्त हुआ। भगवान् के समवशरण की रचना हुई जिसमें चौरासी हजार मुनि, एक लाख बीस हजार आर्यिकायें, दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इस प्रकार धर्म का उपदेश देते हुए वे भगवान् सम्मेदशिखर पर जा पहुँचे। वहाँ एक माह का योग-निरोध कर एक हजार मुनियों के साथ उन्होंने प्रतिमायोग धरण किया और श्रावण शुक्ला पौर्णमासी के दिन सायंकाल के समय अघातिया कर्मों का क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया।

मुनि श्री समतासागरकृत 'शलाका पुरुष' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाति-मद सम्यक्त्व का बाधक है

स्व. बाबू सूरजभान जी वकील

धर्ममार्ग पर कदम रखने के लिए जैन-शास्त्रों में सबसे पहले शुद्ध सम्यक्त्व ग्रहण करने की बहुत भारी आवश्यकता बतलाई है। जब तक श्रद्धा अर्थात् दृष्टि शुद्ध नहीं है, तब तक सभी प्रकार का धर्माचरण उस उन्मत्त की तरह व्यर्थ और निष्फल है, जो इधर-उधर दौड़ता फिरता है और यह निश्चय नहीं कर पाता कि किधर जाना है अथवा उस हाथी के स्नान-समान है जो नदी में नहाकर आप ही अपने ऊपर धूल डाल लेता है।

सम्यक्त्व को मलिन करने वाले पच्चीस मल-दोषों में आठ प्रकार के मद भी हैं, जिनसे सम्यक्त्व भ्रष्ट होता है, उसे बाधा पहुँचती है। इनमें भी जाति और कुल का मद अधिक विशेषता को लिए हुए है। सम्यग्दृष्टि के लिए ये दोनों ही बड़े भारी दूषण हैं। मैं एक प्रतिष्ठित कुल का हूँ, मेरी जाति ऊँची है, ऐसा घमण्ड करके दूसरों को नीच एवं तिरस्कार का पात्र समझना अपने धर्मश्रद्धान को खराब करना है, ऐसा जैन-शास्त्रों में कथन किया गया है।

आदिपुराणादि जैन-शास्त्रों के अनुसार चतुर्थ काल में जैनी लोग एकमात्र अपनी ही जाति में विवाह नहीं करते थे, किन्तु ब्राह्मण तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों ही वर्ण की कन्याओं से विवाह कर लेता था; क्षत्रिय अपने क्षत्रिय वर्ण की, वैश्य की तथा शूद्र की कन्याओं से और वैश्य अपने वैश्य वर्ण की तथा शूद्र वर्ण की कन्या से भी विवाह कर लेता था। बाद को सभी वर्णों में परस्पर विवाह होने लग गये थे, जिनकी कथाएँ जैन-शास्त्रों में भरी पड़ी हैं। **इन अनेक वर्णों की कन्याओं से जो सन्तान होती थी उसका कुल तो वह समझा जाता था जो पिताका होता था और जाति वह मानी जाती थी जो माता की होती थी।** इसी कारण शास्त्रों में वंश से सम्बन्ध रखनेवाले दो प्रकार के मद वर्णन किए हैं। अर्थात् यह बतलाया है कि **न तो किसी सम्यग्दृष्टि को इस बात का घमण्ड होना चाहिए कि मैं अमुक ऊँचे कुल का हूँ और न इस बात का कि मैं अमुक ऊँची जाति का हूँ।** दूसरे शब्दों में उसे न तो अपने बाप के ऊँचे कुल का घमण्ड करना चाहिए और न अपनी माता के ऊँचे वंश का।

जो घमण्ड करता है वह स्वभाव से दूसरों को नीचा समझता है। घमण्ड के वश होकर किसी साधर्मी भाई को, सम्यग्दर्शनादि से युक्त व्यक्ति को, अर्थात् जैन-धर्म-धारी को नीचा समझना अपने ही धर्म का तिरस्कार करना है; क्योंकि धर्म का आश्रय-आधार धर्मात्मा ही होते हैं, धर्मात्माओं के बिना धर्म कहीं रह नहीं सकता। और इसलिए धर्मात्माओं के तिरस्कार से धर्म का तिरस्कार स्वतः हो जाता है। कुल-मद वा जाति-मद करने का यह विष-फल धर्म के श्रद्धान में अवश्य ही बट्टा लगाता है, ऐसा श्री समन्तभद्र स्वामी ने अपने रत्नकरण्डश्रावकाचार के निम्न पद्य नं. 26 में निर्दिष्ट किया है-

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना॥

इसी बात को प्रकारान्तर से स्पष्ट करते हुए अगले श्लोक नं. 27 में बताया है कि जिसके धर्माचरण द्वारा पापों का निरोध हो रहा है, पाप का निरोध करनेवाली सम्यग्दर्शनरूपी निधि जिसके पास मौजूद है, उसके पास तो सब कुछ है, उसको अन्य कुलैश्वर्यादि सांसारिक सम्पदाओं की अर्थात् सांसारिक प्रतिष्ठा के कारणों की क्या जरूरत है? वह तो इस एक धर्म-सम्पत्ति के कारण ही सब कुछ प्राप्त करने में समर्थ है और बहुत कुछ मान्य तथा पूज्य हो गया है। प्रत्युत इसके, जिसके पापों का आस्रव बना हुआ है, धर्म का श्रद्धान और आचरण न होने के कारण जो नित्य ही पापों का संचय करता रहता है, उसको चाहे जो भी कुलादि सम्पदा प्राप्त हो जाय, वह सब व्यर्थ है। उसका वह पापास्रव उसे एक-न-एक दिन नष्ट कर देगा और वह कुलादि सम्पदा उसके दुर्गति-गमनादि को रोक नहीं सकेगी। भावार्थ, जिसने सम्यक्त्वपूर्वक धर्म धारण करके पाप का निरोध कर दिया है, वह चाहे कैसी ही ऊँची-नीची जाति वा कुल का हो, संसार में वह चाहे कैसा भी नीच समझा जाता हो, तो भी उसके पास सब कुछ है और वह धर्मात्माओं के द्वारा मान तथा प्रतिष्ठा पाने का पात्र है, तिरस्कार का पात्र नहीं। और जिसको धर्म का श्रद्धान नहीं, धर्म पर जिसका आचरण नहीं और इसलिए जो मिथ्यादृष्टि हुआ निरन्तर ही पाप संचय किया करता है, वह चाहे जैसी भी ऊँच से ऊँच जाति का, कुल का अथवा पद का धारक हो, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, शुक्ल हो, क्षोत्रिय हो, उपाध्याय हो, सूर्यवंशी हो, चन्द्रवंशी हो, राजा हो, महाराजा हो, धन्नासेठ हो, धनकुबेर हो, विद्वान् हो, तपस्वी हो, ऋद्धिधारी हो, रूपवान् हो, शक्तिशाली हो, और चाहे जो कुछ हो, परन्तु वह कुछ भी नहीं है। पापास्रव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कारण उसका निरन्तर पतन ही होता रहेगा और वह अन्त को दुर्गति का पात्र बनेगा। समन्तभद्र का वह गम्भीरार्थक श्लोक इस प्रकार है

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्॥

इसके बाद का निम्न श्लोक नं. 28 भी इसी बात को पुष्ट करने के लिए लिखा गया है और उसमें यह स्पष्ट बतलाया गया है कि चाण्डालका पुत्र भी यदि सम्यग्दर्शन ग्रहण कर ले, धर्म पर आचरण करने लगे, तो कुलादि सम्पत्ति से अत्यन्त गिरा हुआ होने पर भी पूज्य पुरुषों ने उसको 'देव' अर्थात् आराध्य बतलाया है, तिरस्कार का पात्र नहीं; क्योंकि वह उस अंगार के सदृश होता है, जो बाह्य में राख से ढका हुआ होने पर भी अन्तरंग में तेज तथा प्रकाश को लिए हुए है और इसलिए कदापि उपेक्षणीय नहीं होता -

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्॥

फिर इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए श्लोक नं. 29 में लिखते हैं कि "धर्म धारण करने से तो कुत्ता भी देव हो जाता है और अधर्म के कारण-पापाचरण करने से-देव भी कुत्ता बन जाता है। तब ऐसी कौन सी सम्पत्ति है जो धर्मधारी को प्राप्त न हो सके ?" ऐसी हालत में धर्मधारी कुत्ते को क्यों नीचा समझा जाय और अधर्मी देव को तथा अन्य किसी ऊँचे वर्णा वा जातिवाले धर्महीन हो क्यों ऊँचा माना जाय? वह श्लोक इस प्रकार है -

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
कापि नाम भवदेन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम्॥

इस प्रकार आठों प्रकार के मदों का वर्णन करते हुए श्री समन्तभद्र स्वामी ने जाति और कुल के मद का विशेष रूप से उल्लेख करके इन दोनों मदों के छुड़ाने पर अधिक जोर दिया है। कारण इसका यही है कि हिन्दुस्तान को एक मात्र इन्हीं दो मदों ने गारत किया है। ब्राह्मणों का प्राबल्य होने पर कुल और जाति का घमण्ड करने की यह बीमारी सबसे पहले वेदानयायी हिन्दुओं में फूटी। उस समय एकमात्र ब्राह्मण ही सब धर्म-कर्म के ठेकेदार बन बैठे, क्षत्रिय और वैश्य के वास्ते भी वे ही पूजन-पाठ और जप-तप करने के अधिकारी रह गए; शूद्र न तो स्वयं ही कुछ धर्म कर सकें और न ब्राह्मण ही उनके वास्ते कुछ करने पावें, ऐसे आदेश निकले; शूद्रों की छाया से भी दूर रहने की आज्ञाएँ जारी हुईं। अचानक भी यदि कोई वेद का वचन शूद्र के कान में पड़ जाय, तो उसका कान फोड़ दिया जाय और यदि कोई धर्म की बात उसके मुख से निकल जाय तो उसकी जीभ काट ली जाय, ऐसे विधान भी बने। प्रत्युत इसके, ब्राह्मण चाहे कुछ धर्म कर्म जानता हो या न जानता हो और चाहे वह कैसा ही नीच कर्म करता हो, तो भी वह पूज्य माना जावे। **ऐसा होने पर एकमात्र हाड़मांस की ही छुटाई-बड़ाई रह गई। किसी का हाड़ मांस पूज्य और किसी का तिरस्कृत समझा गया॥**

फल इसका यह हुआ कि धर्म-कर्म सब लुप्त हो गया। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो धर्म-ज्ञान से वंचित कर ही दिये गए थे; किन्तु ब्राह्मणों को भी अपनी जाति के घमण्ड में आकर ज्ञानप्राप्ति और किसी प्रकार के धर्माचरण की जरूरत न रही। इस कारण वे भी निरक्षर-भट्टाचार्य तथा कोरे बुद्धु रहकर प्रायः शूद्रों के समान बन गए और अन्त को रोटी बनाना, पानी पिलाना, बोझा ढोना आदि शूद्रों की वृत्ति तक धारण करने के लिए उन्हें बाधित होना पड़ा।

संक्रामक रोग की तरह यह बीमारी जैनियों में भी फैलनी शुरू हुई, जिससे बचाने के लिए ही आचार्यों को यह सत्य सिद्धान्त खोलकर समझाना पड़ा कि जो कोई अपनी जाति व कुल आदि का घमण्ड करके किसी नीचातिनीच, यहाँ तक कि चाण्डाल-रज-वीर्य से पैदा हुए चाण्डाल-पुत्र को भी, जिसने सम्यग्दर्शनादि के रूप में धर्म धारण कर लिया है, नीचा समझता है, तो वह वास्तव में उस चाण्डाल का अपमान नहीं करता है, किन्तु अपने जैन-धर्म का ही अपमान करता है, उसके हृदय में धर्म का श्रद्धान रंचमात्र भी नहीं है। धर्म का श्रद्धान होता, तो जैन-धर्मधारी चांडाल को क्यों नीचा समझता ? धर्म धारण करने से तो वह चाण्डाल बहुत ऊँचा उठ गया है; तब वह नीचा क्यों समझा जाय ? कोई जाति से चाण्डाल हो वा अन्य किसी बात में हीन हो, यदि उसने जैन धर्म धारण कर लिया है, तो वह बहुत कुछ ऊँचा तथा सम्माननीय हो गया है। सम्यग्दर्शन के वात्सल्य अङ्ग-द्वारा उसको अपना साधर्मी भाई समझना, प्यार करना, लौकिक कठिनाइयाँ दूर करके सहायता पहुँचाना और धर्म-साधन में सर्व प्रकार की सहूलियतें देना, यह सब सच्चे श्रद्धानी का मुख्य कर्त्तव्य है। **जो ऐसा नहीं करता उसमें धर्म का भाव नहीं, धर्म की सच्ची श्रद्धा नहीं और न धर्म से प्रेम ही कहा जा सकता है।** धर्म से प्रेम होने का चिह्न ही धर्मात्मा के साथ प्रेम तथा वात्सल्य भाव का होना है। सच्चे धर्म-प्रेमी को यह देखने की जरूरत ही नहीं होती कि अमुक धर्मात्मा का हाड़मांस किस रजवीर्य से बना है, ब्राह्मण से बना है या चाण्डाल से?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य भी अपने दर्शनपाहुड में लिखते हैं -

णवि देहो वन्दिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेव सावओ होई ॥२७॥

अर्थात् न तो देह को बन्दना की जाती है, न कुल की और न जाति-सपन्न की। गुणहीन कोई भी, वन्दना किये जाने के योग्य नहीं; जो न तो श्रावक ही होता है और न मुनि ही। भावार्थ - वन्दना अर्थात् पूजा-प्रतिष्ठा के योग्य या तो श्रावक होता है और या मुनि; क्योंकि ये दोनों ही धर्म-गुण से विशिष्ट होते हैं। धर्म-गुण-विहीन कोई भी कुलवान् तथा ऊँची जातिवाला अथवा उसकी हाड़माँस भरी देह पूजाप्रतिष्ठा-योग्य नहीं है।

श्री शुभचन्द्राचार्य ने ज्ञानार्णव के अध्याय 21 श्लोक नं. 48 में लिखा है कि =

कुलजातीश्वरत्वादिमद-विध्वस्तबुद्धिभिः।
सद्यः संचीयते कर्म नीचैर्गतिनिबन्धनम्॥

अर्थात् कुलमद, जातिमद, ऐश्वर्यमद आदि मदों से जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है ऐसे लोग बिना किसी विलम्ब के शीघ्र ही उस पाप कर्म का संचय करते हैं जो नीच गति का कारण है, नरक-तिर्यंचादि अनेक कुगतियों और कुयोनियों में भ्रमण कराने वाला है।

इन्हीं शुभचन्द्राचार्य ने ज्ञानार्णव के 9वें अध्याय के श्लोक नं. 30 में यह भी प्रकट किया है कि जो लोग विकलाङ्गी हों, खण्डितदेह हों, विरूप हों, बदसूरत हों, दरिद्री हों, रोगी हों और कुलजाति आदि से हीन हों, वे सब शोभासम्पन्न हैं, यदि सत्य-सम्यक्त्व से विभूषित हैं। अर्थात् धर्मात्मा पुरुष कुल, जाति आदि से हीन होने पर भी किसी प्रकार तिरस्कार के योग्य नहीं होते। जो जाति आदि के मद में आकर उनका तिरस्कार करता है, वह पूर्वोक्त श्लोकानुसार अपने को नीच गति का पात्र बनाता है। यथा -

खंडितानां विरूपाणां दुर्विधानां च रोगिणाम्।
कुलजात्यादिहीनानां सत्यमेकं विभूषणम्॥

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा की 430 वीं गाथा में भी लिखा है कि उत्तमधर्मधारी तिर्यंच-पशु भी उत्तम देव हो जाता है तथा उत्तम धर्म के प्रसाद से चांडाल भी देवों का देव सुरेन्द्र बन जाता है। यथा -

उत्तमधम्मेणजुदो होदि तिरक्खो वि उत्तमो देवो।
चंडालो वि सुरिंदो उत्तमधम्मेण संभवदि॥

आचार्यों की ऐसी स्पष्ट आज्ञाओं के होने पर भी, अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि कुल और जाति के घमंड का यह महारोग जैनियों में भी जोर-शोर के साथ घुस गया, जिसका फल यह हुआ कि नवीन जैनी बनते रहना तो दूर रहा, लाखों-करोड़ों मनुष्य, जिनको इन महान् आचार्यों ने बड़ी कोशिश से जैनी बनाया था, उच्च कुल का घमंड रखने वाले जैनियों में प्रतिष्ठा न पाने के कारण जैन धर्म को छोड़ बैठे! इसके सबूत के तौर पर अब भी अनेक जातियाँ ऐसी मिलती हैं, जो किसी समय जैनी थीं, परन्तु अब उनको जैनधर्म से कुछ भी वास्ता नहीं है। और यह तो स्पष्ट ही है कि जहाँ इस भारतवर्ष में किसी समय जैनी अधिक और अन्यमती कम थे, वहाँ अब पैंतीस करोड़ मनुष्यों में कुल ग्यारह लाख ही जैनी रह गये हैं [1] और उनको भी अनेक प्रकार के अनुचित दण्ड-विधानों आदि के द्वारा घटाने की कोशिश की जा रही है।

घटें या बढ़ें, जिनको धर्म से प्रेम नहीं है, जिनको धर्म की सच्ची श्रद्धा नहीं है और जो सम्यक्त्व के स्थितीकरण तथा वात्सल्य अङ्गों के पास तक नहीं फटकते उन्हें ऐसी बातों की क्या चिन्ता और उनसे क्या मतलब! हाँ, जो सच्चे श्रद्धानी हैं, धर्म से जिनको सच्चा प्रेम है, वे जरूर मनुष्यमात्र में उस सच्चे जैन धर्म को फैलाने की कोशिश करेंगे, जिस पर उनकी दृढ़ श्रद्धा है। अर्थात् कोई छूत हो वा अछूत, ऊँच हो वा नीच सभी को वे धर्म सिखाएँगे, सबही को जैनी बनाएँगे और जो जैनधर्म धारण कर लेगा, उसके साथ वात्सल्य रखकर हृदय से प्रेम भी करेंगे, उसकी प्रतिष्ठा भी करेंगे और उसे धर्म-साधना की सब प्रकार की सहूलियतें भी प्रदान करेंगे तथा दूसरों से भी प्राप्त कराएँगे। उनके लिए स्वामी समन्तभद्र का निम्न वाक्य बड़ा ही पथ-प्रदर्दक होगा, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि जो श्री जिनेन्द्रदेव को नतमस्तक होता है, उनकी शरण में आता है, अर्थात् जैनधर्म को ग्रहण करता है, वह चाहे कैसा ही नीचातिनीच क्यों न हो, इसी लोक में, इस ही जन्म में, अति ऊँचा हो जाता है; तब फिर कौन ऐसा मूर्ख है अथवा कौन ऐसा बुद्धिमान् है, जो जिनेन्द्रदेव की शरण में प्राप्त न होवे अर्थात् उनका बताया हुआ धर्ममार्ग ग्रहण न करे? सभी जैन धर्म की शरण में आकर अपना इहलौकिक तथा पारलौकिक हित साधन कर सकेंगे।

यो लोके त्वानतः सोऽतिहीनोऽप्यतिगुरुर्यतिः।
बालोऽपि त्वा श्रितं नौति को नो नीतिपुरः कुतः॥

---

1. यह लेख 1938 ई. में लिखा गया था।

- सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री समन्तभद्र आदि महान् आचार्यों के समय में ऐसा ही होता था। सभी प्रकार के मनुष्य जैन-धर्म ग्रहण करके ऊँचे बन जाते थे, माननीय और प्रतिष्ठित हो जाते थे। तब ही तो इन महान् आचार्यों ने हिंसामय यज्ञों को भारत से दूर भगाया और अहिंसामय धर्म का झण्डा फहराया। अब भी यदि ऐसा ही होने लगे, जैनियों का हृदय जाति-कुलादि के मद से शून्य होकर धर्म की भावना से भर जाय और वे धर्मप्रचार के लिए अपने पूर्वजों का अनुकरण करने लगें, तो दुनिया भर के लोग आज भी इस सच्चे धर्म की शरण में आने के लिए उत्सुक हो सकते हैं। पर यह तभी हो सकता है, जब इस समय जो लोग जैनी कहलाते हैं और जैनधर्म के ठेकेदार बनते हैं, उनको धर्म का सच्चा श्रद्धान हो, आचार्यों के वाक्यों का उनके हृदय में पूरा पूरा मान हो, धर्म के मुकाबिले में लौकिक रीति-रिवाजों का जिन्हें कुछ ख्याल न हो, कुल और जाति का झूठा घमण्ड जिनके पास न हो और अपना तथा जीवमात्र का कल्याण करना ही जिनका एकमात्र ध्येय हो। आशा है धर्मप्रेमी बन्धु इन सब बातों पर विचार कर अपने कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होंगे।

'अनेकान्त'/बर्ष 2/किरण 3/विक्रम संवत् 1995 से साभार।

''पुरातत्त्व विभाग के लिए अति महत्वपूर्ण पुरासम्पदा''
(बड़े बाबा के जीर्ण मंदिर के ध्वस्त अवशेष)
आज के कानून के तहत
The ancient Monuments & Archeological Sites & Remains Act 1958.

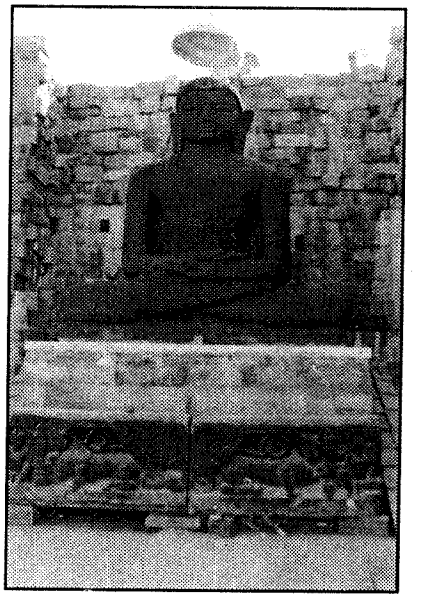

पुरातत्त्व विभाग के लिए गैरजरूरी
''जीवित बड़े बाबा जीर्ण मंदिर से बाहर विराजमान''
यह पुरातत्त्व विभाग की नजर में महत्वपूर्ण नहीं था
''जीवित तत्त्व का पुरातत्त्व में कोई स्थान नहीं''
मूर्ति एवं मन्दिर में महत्त्वपूर्ण क्या है?

नोट : पुरातत्त्व के पहिरेदार ''समन्वय'' का डंडा/झंडा थामे एक सम्पादक ने अग्रलेख में सुझाव दिया है कि अब ''बड़ेबाबा'' को पुन:जीर्ण मंदिर के स्थान पर स्थापित कराना चाहिये।

समाज को दिशानिर्देश देनेवाले अतिबुद्धिमानों से सवाल है कि मूर्ति की सुरक्षा की जिम्मेवारी और यह पुन: स्थानान्तरण कैसे होगा? किनके द्वारा? पुरातत्त्व विभाग, समाज, सरकार और उनकी मंजूरी से या सम्पादक के करतब से?

हे मेरे भाई! प्रत्यक्ष आकर तो देखो। ऐसे ध्वस्त मंदिर के अवशेषों पर अब पूर्व जर्जर मंदिर की अनुकृति बनानी होगी, तब हमारे सम्पादक जी का सुझाव लागू होगा। बलिहारी है बुद्धि की!

ब्र. अमरचन्द जैन, कुण्डलपुर (दमोह) म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्दिष्ट - मीमांसा

पं. छोटेलाल जी बरैया, धर्मालंकार, उज्जैन

साध्वाचार या क्षुल्लक-ऐलक की चर्या से सम्बन्धित उद्दिष्टत्याग सम्प्रति श्रावकों में विशेष चर्चणीय विषय हो गया है। जो लोग उद्दिष्ट का शाब्दिक अर्थ भी नहीं जानते, वे भी इस चर्या में प्राय: संलग्न दिखाई देते हैं, किन्तु आचार-सम्बन्धी ग्रंथों का अवलोकन कोई भी नहीं करना चाहता। वस्तुत: यदि श्रावकाचार और साध्वाचार-सम्बन्धी पूर्वाचार्य-प्रणीत मूलग्रन्थों का सूक्ष्म पठन-मनन चिन्तन किया जावे, तो उद्दिष्ट के सम्बन्ध में जो भ्रमपूर्ण वातावरण यत्र-तत्र दिखाई देता है और जो वितर्कणाएँ उद्दिष्ट के सम्बन्ध में दी जा रही हैं, उनको कोई अवकाश प्राप्त नहीं हो सकता है।

सर्वप्रथम उद्दिष्ट के सम्बन्ध में जो कुछ एक वितर्कणाएँ हैं, उन्हीं को पाठकों के समक्ष रखूँ -

1. ''आज हमारे गांव में मुनिश्वर आये हैं उनके लिये हमने आहार बनाया है'' इस प्रकार आहारदान देने में उद्दिष्ट दोष होता है। उद्दिष्ट का जन-साधारण ने सामान्य से यही अर्थ समझ लिया है कि मुनिजनों के लिये ही आजकल आहार बनाया जाता है और इस प्रकार उनके लिये बनाया गया आहार उद्दिष्ट दोष से दूषित है। अत: वर्तमान में प्राय: साधुगण उद्दिष्ट आहार ही ग्रहण करते हैं।

2. कुछ लोग कहते हैं कि हम नीरस भोजन नहीं करते और न गर्म जल का उपयोग अपने भोजन में करते। फल-दूध आदि का सेवन भी भोजन के साथ नहीं करते। अत: यह सब आहार साधुओं के लिए ही बनाया जाता है इस कारण वह आहार उद्दिष्टदोष से दूषित है। इत्यादि अन्य अनेक प्रकार की वितर्कणाएँ लोग करते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि वर्तमान में जब प्रतिमाधारी श्रावक ही नहीं हो सकते, तब मुनि कैसे हो सकते हैं ? वर्तमान की आहारविधि मुनियों के योग्य नहीं है। इस प्रकार के विचारों से उद्दिष्ट शब्द के अर्थ को अत्यन्त जटिल कर दिया है। अत: आचार ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में उद्दिष्ट-मीमांसा ही इस निबन्ध का प्रमुख लक्ष्य है।

सर्वप्रथम हमें यह सोचना है कि उद्दिष्ट दोष पात्र के आश्रित है या दाता के आश्रित? उद्दिष्ट का क्या लक्षण है? इत्यादि।

उद्दिष्टदोष दाता के आश्रित न होकर पात्र के आश्रित है। अर्थात् पात्र-साधु अपने मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना-रूप नवकोटी की प्रेरणा से उत्पन्न आहार ग्रहण करता है, तो वह आहार उद्दिष्ट दोष से दूषित है। **अभिप्राय यह है कि यदि साधु उक्त नवकोटी पूर्वक स्वयं आहार बनाने की प्रेरणा करते हैं तो वह उद्दिष्ट दोष होता है।** मुनिजन इस प्रकार के उद्दिष्ट के त्यागी होते हैं। कहा भी है -

स्वनिर्मितं त्रिधा येन कारतोऽ नुमत: कृत:।
नाहारो गृह्यते पुंसा त्यक्तोद्दिष्ट: स भण्यते॥

(सुभा रत्न सं. श्लो. 843 पृ. 96)।

''जो दिव्य आत्मा अपने मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से अपने लिए उद्देश्यकर स्वयं आहार बनवाकर उस (अपने लिये बने हुए) आहार को ग्रहण नहीं करता, वह उद्दिष्ट-त्यागी कहलाता है।''

सकलकीर्ति आचार्य के शब्दों में ''**कृतादिभिर्महादोषैस्त्यक्ताहारावलोकिन:**'' (प्रश्नोत्तर-श्रावकाचार) मुनिगण अपने लिए आहार बनवाने के लिए कृत-कारित-अनुमोदना नहीं करते, अत: वे उद्दिष्ट के त्यागी कहे जाते हैं। अथवा यदि श्रावक स्वयं आकर मुनिराज से यह कहे कि ''महाराज मैंने आज अमुक व्यंजन बनाये हैं अत: मेरे यहाँ ही आज पधारें,'' या दूसरों से भी कहलावे और महाराज उसके यहाँ आहार के लिए पहुँच जाते हैं, तो वह भी उद्दिष्ट दोष है, इस प्रकार साधुगण आहार करने के त्यागी है।

दाता के आश्रित औद्देशिक दोष होता है। नाग-यक्षादि देवता के लिए, अन्यमती पाखण्डियों के लिए, दीन-अनाथजनों के लिए उद्देश्य करके बनाया गया भोजन औद्देशिक है। संक्षेप में औद्देशिक भोजन के चार प्रकार कहे हैं। तद्यथा -

1. जो कोई आवेगा सबको देंगे, ऐसे उद्देश्य से किया अन्न यावान्नुद्देश है। 2. पाखण्डी अन्यलिंगी के निमित्त से बनाया भोजन समुद्देश है। 3. तापस परिव्राजक आदि के निमित्त बनाया भोजन आदेश है। 4. दिगम्बर साधुओं के निमित्त से बनाया गया भोजन समादेश दोष से दूषित है।

उद्दिष्ट का विशेष स्पष्टीकरण

उद्दिष्टत्यागी, श्रावक को अपने लिए आहार बनवाने के लिए नहीं कहता है कि ''आज तुम मेरे लिए अमुक आहार बनाओ, मैं तुम्हारे घर पर ही आज आहार ग्रहण करूँगा।'' इसी प्रकार अपनी शारीरिक चेष्टा से इशारा भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करता कि ''आज तुम मेरे लिए अमुक आहार बना लेना, मैं तुम्हारे यहाँ ही आऊँगा'' और न मन में ही इस प्रकार का चिन्तन करता है कि ''अमुक सेठ के या सामान्य भी गृहस्थ के घर नानाविध व्यंजनयुक्त उत्तम आहार बनाया, सो आज मैं उसी के यहाँ आहार ग्रहण करूँगा।'' इत्यादि नवकोटि से अपने लिये स्वयं आहार बनवाकर उसको ग्रहण नहीं करता वह उद्दिष्ट त्यागी है।

उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्दिष्टत्यागी स्वयं अपने लिए मन-वचन और काय से किसी श्रावक को आहार बनाने की प्रेरणा नहीं देता, न दूसरों से कहलवाता और न कहकर बनाये गये की अनुमोदना ही करता है। आहार सम्बन्धी समस्त संकल्प-विकल्पों का मन-वचन-काय, कृत-कारित और अनुमोदनारूप नवकोटिपूर्वक त्याग होता है।

श्रावक का मुख्य कर्तव्य ही यह है कि अपने ग्राम या नगर में साधुओं का आगमन होने पर अपने घर भक्तिपूर्वक साधुओं का आहार देवे। जो अपने आवश्यक कर्तव्यस्वरूप दान नहीं देता वह वास्तव में श्रावक ही नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्य ने रयणसार में कहा भी है - **''दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे, णा सावया तेण विणा''** दान और पूजा श्रावक का मुख्य कर्तव्य है उसके बिना श्रावक, श्रावक नहीं कहा जा सकता। अत: श्रावक को चाहिए कि वह अपने नगर या ग्राम में आये हुए मुनिजनों एवं अन्य त्यागीजनों को आहारदान अवश्य देवे। व्यर्थ के झमेले में पड़कर आहारदान से वंचित न रहे।

मुनिजन प्राय: वृत्तिपरिसंख्यान नामक तप के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की प्रतिज्ञाएँ लेकर आहार को जाते हैं। यदि यथाचिंतित वृत्तिपरिसंख्यान जिस भी श्रावक के यहाँ मिल जाता है वहाँ 46 दोष और 32 अन्तराय टालकर निर्दोष-एषणासमिति-युक्त आहार ग्रहण करते हैं। फिर श्रावकों द्वारा यह कल्पना करना कि ''हमने तो महाराज के लिए आहार बनाया'' बिल्कुल अयथार्थ है, क्योंकि यदि महाराज के लिए ही आहार बनाया होता, तो महाराज का आहार अवश्य ही उस घर में होना चाहिए था, किन्तु ऐसा तो हुआ नहीं। अत: उक्त प्रकार मिथ्या कल्पना करना व्यर्थ है।

यदि उद्दिष्ट शब्द की उक्त व्याख्या न मानी जावे, तो आगम और व्यवहार के लोप की सम्भावना होगी। दूसरी बात यह है कि उद्दिष्टदोष मात्र आहारदान में ही नहीं होता, वरन् चारों ही प्रकार के दानों में माना गया है। यह बात पहले भी बतायी जा चुकी है कि उद्दिष्टदोष पात्र के आश्रित है, न कि दाता के आश्रित।

आचार्यप्रणीत मूलग्रंथों को नहीं पढ़ने से तथा मात्र हिन्दी ग्रंथों को पढ़ने से कई बन्धुओं की यह धारणा बन रही है कि उद्दिष्टदोष केवल आहार से ही सम्बन्धित है, अन्य औषधि, वसतिका आदि से नहीं। किन्तु यह मान्यता भूल भरी है, क्योंकि आचार्यों ने वसतिका, उपकरण आदि पदार्थों को भी उद्दिष्टादि दोषों से रहित ग्रहण करने की आज्ञा बतलाई है और उसी के अनुसार अपनी समाचर्या मुनिजन करते हैं। कहा भी है -

पिण्डं सेज्जं उवधिं उग्गमउप्पायणेसणदीहिं।
चारत्तिरक्खणहं सोधधयं होदि सुचरित्तं॥

(मूलाचार-द्वि. भाग-समाचार विभाग)

''पिण्ड, शय्या, उपकरण, उद्गम, उत्पादनादि दोषों से रहित ही ग्रहण करने से मुनिगणों के चारित्र की रक्षा व शुद्धि होती है। अथवा उद्दिष्टादि दोषों से रहित पिण्ड, शय्या, उपकरणादि पदार्थ ग्रहण करनेवाला मुनि ही विशुद्ध चारित्र का धारी होता है।''

पिण्ड (आहार-पानी औषधादि), शय्या (वसतिका, चटाई, फलक, तृणादि), उपकरण (शास्त्र, पच्छिका, कमण्डलु आदि)। मूलाचार ग्रन्थ मुनियों के आचारसम्बन्धी ग्रन्थों में प्रधानग्रन्थ है, उक्त प्रकरण के संबंध में पुन: वहाँ कहा है कि-

''जो साधु पिण्ड, उपधि और शय्या आदि का उद्गम-उत्पादनादि दोषों से सहित ग्रहण करता है, वह अपने मूलगुणों से रहित होता हुआ मूलस्थान (श्रावकपद) को प्राप्त हो जाता है तथा वह लोक में यति धर्मविहीन होकर श्रमणों में तुच्छ समझा जाता है।''

अत: जो दाता प्रासुक दान (आहारदानादि) और उपधि(वसतिका, तृणदि) अपने हाथ से शोधकर देता है एवं जो पात्र (मुनि) ऐसे आहार अथवा उपधि को ग्रहण करते हैं, तो दाता और पात्र दोनों को महाफल की प्राप्ति होती है। कहा भी है -

फासुगदाणं फासुग-उवधिं तह दोवि सोधीए।
जो देदि जो य गिण्हदि दोण्हं वि महाफलं होई॥

दाता को उद्दिष्ट का त्याग नहीं होता, पात्र को होता है, क्योंकि दाता तो पिच्छिका, कमण्डलु, औषधि आदि समस्त वस्तुएँ पात्र को लक्ष्य करके ही तैयार करता है। यदि वह उद्दिष्ट समझकर दान ही नहीं करे, तो दान का अभाव होगा तथा बहुत बड़ी अव्यवस्था हो जावेगी, कारण कि दाता और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पात्र परस्पर में यथायोग्य एक दूसरे पर आश्रित होते हैं, तभी दोनों गृहस्थ-मुनिधर्म निर्बाधगति से चल सकते हैं। साथ ही निम्न शंकाओं की सन्तति को भी नहीं रोका जा सकेगा।

यदि कहा जावे कि वर्तमान में तो उद्दिष्ट आहार होता है, क्योंकि हम नीरस भोजन नहीं करते, गर्मपानी नहीं पीते, शुद्ध भोजन नहीं करते इत्यादि कारण कहे जाते हैं। इस प्रकार की शंकाओं की प्रतिशंकाएँ की जा सकती हैं और वे ही समाधान स्वरूप भी होंगी।

1. न तो सभी चतुर्थकाल में गरमपानी पीते थे और न ही आज पीते हैं, तो गरमपानी करना ही उद्दिष्ट माना जावे अथवा मुनिराज चतुर्थकाल में भी एक-दो-तीन या समस्त रसों का परित्याग कर भोजन ग्रहण करते थे और आज प्रायः मुनिराज रसपरित्यागतप के अन्तर्गत रसों का यथासमय कुछ काल की मर्यादा पर्यंत या जीवनपर्यंत एक-दो-तीन या समस्त रसों का त्याग कर भोजन ग्रहण करते हैं। श्रावक तो चतुर्थकाल में प्रायः सभी सरस भोजन करते थे और अब भी सरस भोजन ही प्रायः करते हैं। चतुर्थकाल में रसरहित भोजन की व्यवस्था होती थी और अब भी होती है तब फिर उद्दिष्ट दोष मानने से आहारदान का ही अभाव हो जावेगा।

2 किसी मुनिराज को कोई व्याधि विशेष हो जाने पर श्रावक अपना परम कर्तव्य समझते हुए उनके रोग निवारण हेतु औषधोपचार की व्यवस्था बनाता है और मात्र वह तद्रोग से ग्रसित मुनिराज के लिये ही बनाता है, श्रावक स्वयं तो उस रोग से ग्रसित नहीं है। अतः इस प्रकार तैयार की गई औषधि को उद्दिष्टदोष से दूषित माना जावेगा, तो फिर औषधदान का ही अभाव मानना पड़ेगा। ऐसी व्यवस्था वर्तमानवत् ही चतुर्थकाल में भी होती थी,क्योंकि रोगादि तो उस समय भी होते थे।

3. वसतिका दान का भी अभाव प्राप्त होता है, क्योंकि वसतिका भी उद्दिष्ट दोष से दूषित नहीं होना चाहिए, ऐसी आगम-आज्ञा है, तब फिर कोन्नूर के राजा ने साधुओं के लिये 700 गुफाओं को बनवाया था। तेरदाल आदि स्थानों में भी सैकड़ों की संख्या में वसतिकाएँ मुनिराजों के लिये बनवाई गई थीं। उड़ीसा प्रान्त में भी खण्डगिरि-उदयगिरि क्षेत्र पर दिगम्बर मुनिश्वरों के लिये महाराजा खारवेल ने अनेकों गुफाएँ बनवाईं थीं, जिनका अस्तित्व आज भी है। यदि इसमें भी उद्दिष्टदोष माना जावे, तो अभयदान के प्रतिस्वरूप वसतिकादान भी नहीं बन सकेगा।

4. पिच्छी-कमण्डलु आदि उपकरण गृहस्थों के लिए नहीं होते हैं। तब फिर मुनिराजों के निमित्त से कमण्डलु मँगवाकर प्रदान करते हैं अथवा मयूर पिच्छिका तो खासकर दिगम्बर साधुओं के लिए ही बनाई जाती है और उन्हें संयमोपकरण के रूप में प्रदान की जाती हैं, तो यदि उनको उद्दिष्टदोष से दूषित माना जावेगा, तब उपकरणदान कैसे बनेगा और पिच्छिका आदि उपकरण के बिना तो मुनिराज का आवागमन भी नहीं बन सकेगा।

5. इसी प्रकार आर्यिकागण की साड़ी, क्षुल्लक, ऐलक आदि के रंगीन वस्त्र उनके उद्देश्यपूर्वक बनाये जाते हैं। कोई भी श्राविका मात्र 16 हस्तप्रमाण एक साटिका नहीं पहनती और न ही श्रावकागण मात्र लंगोट-चादर का उपयोग करते हैं। अतः वे उक्त वस्त्र आर्यिका आदि के निमित्त ही तैयार करवाकर उन्हें प्रदान करते हैं। यदि इन्हें उद्दिष्टदोष से दूषित माना जावे, तो फिर वस्त्रदान का अभाव होगा।

इत्यादि अन्य अनेकों शंकाओं का परित्याग होना दुस्तर होगा, तथा आगम मर्यादा का भी लोप हो जावेगा। अतः आगम के परिप्रेक्ष्य में उद्दिष्ट का स्वरूप भली भाँति समझकर उद्दिष्ट का त्यागी पात्र होता है, यह निर्णय करके अपने आपको आहारदान आदि में प्रवृत्त करते हुए गृहस्थ धर्म के आवश्यक कर्तव्य का परिपालन अवश्य करना चाहिए।

अब यह तो अच्छी प्रकार सिद्ध हो गया है कि उद्दिष्ट दोष पात्र के आश्रित होता है, किन्तु उद्गम आदि 16 दोषों में औद्देशिक नाम का एक दोष है, जो पात्र के आश्रित न होकर दाता के आश्रित होता है। उस औद्देशिक दोष से दूषित भोजन की जानकारी मिलने पर साधु उसका परित्याग करते हैं और आहार ग्रहण के पश्चात् ज्ञात होने पर उसका प्रतिक्रमण करके आत्मविशुद्धि करते हैं।

औद्देशिक के सम्बन्ध में मूलाचारादि आचारग्रन्थों में कहा गया है कि जो आहार, वसतिका, उपकरणादि किसी भी एक पात्रविशेष का उद्देश्य करके तैयार किये जावें, वह औद्देशिक कहलाता है। ऐसे औद्देशिक आहारादि का पता चलने पर साधु उस आहार का परित्याग करते हैं। इस प्रकार उद्गम के 16 दोषों में दाता आश्रित जो औद्देशिक दोष है वह स्वल्प दोष है। ''अधःकर्मणः पश्चात् औद्देशिकं सूक्ष्मदोषमपि परिहर्तुकामः प्राह'' अर्थात् ''अधःकर्म के पश्चात् औद्देशिक नामक स्वल्प दोष को भी दूर करने के लिए कहते हैं।'' इन वचनों का यही अभिप्राय है कि औद्देशिक दोष बहुत बड़ा दोष नहीं है। सूक्ष्म या स्वल्प होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर भी उस दोष को भी टालने की आगम= आज्ञा है।

औद्देशिक दोष के सम्बन्ध में विशेष स्पष्टीकरण

पात्र विशेष के निमित्त से बना भोजन औद्देशिक है। पात्रविशेष के सम्बन्ध में कहा गया है कि "अन्य पाखण्डी जो कोई आवेंगे उनको सभी को दूँगा, परिव्राजक आदि जो भी आवेंगे, उन सभी निर्ग्रन्थ साधुओं को दूँगा।" इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के पात्रों को उद्देश्य करके बनाया हुआ अन्नादि औद्देशिक दोष से दूषित होता है। उक्त कथन का मूल अभिप्राय यह है कि किसी खास व्यक्ति के लिए संकल्पपूर्वक कोई उत्तम वस्तु तैयार की गई हो, तो वह उद्देश्ययुक्त होने से निर्दोष नहीं है। यदि वह अन्य पात्र को दान में दे दी जावे, तो वह वस्तु जिनके लिए तैयार की गई थी उनके परिणाम में मोह-लोभ आदि के निमित्त से असूया के भाव उत्पन्न हो सकते हैं, जिससे उनके मन को आघात पहुँच सकता है और दाता के मन में भी अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प होने की सम्भावना बनी रहती है। अत: किसी विशेष व्यक्ति को लक्ष्यकर बनाई वस्तु अन्य को दे देना औद्देशिक दोष से दूषित है, ऐसा श्रावक आश्रित दोष है। यदि मुनिराज को ज्ञात हो जावे, तो वे उस आहार को ग्रहण नहीं करते हैं। इतना ही नहीं यदि श्रावक अपने को उद्देश्य करके भी कोई विशेष भोज्य पदार्थ बनाता है और उसमें यह संकल्प कर लेता है कि यह मैं ही खाऊँगा, तत्पश्चात् पात्र का निमित्त मिलने पर वह वस्तु उन्हें दे देता है, तो वह औद्देशिक होने से ज्ञात होने पर मुनिराज ग्रहण नहीं करते और यदि ज्ञात नहीं हो सकने पर श्रावक दे भी देता है, तो श्रावक-आश्रित वह दोष होता है। इसी प्रकार नाग, यक्षादि के संकल्प पूर्वक बनाया भोजन, पाखण्डी, कुलिंगियों के उद्देश्य से बनाया भोजन भी मुनिराज आदि पात्रों को देना औद्देशिकदोष युक्त है।

"श्रावक अपने लिये भोजन बनावे और उसमें ही मुनिराज को भी आहार दे" इसका यही अभिप्राय है कि श्रावक किसी वस्तुविशेष में खास व्यक्ति का उद्देश्य कर भोजन न बनावे, सामान्य से भोजन बनावे और पात्रदान के पश्चात् शेष बचे उस भोजन को स्वयं भी खावे। **ऐसा नहीं होना चाहिए कि महाराज को आहार देने के पश्चात् उस भोजन में से स्वयं नहीं खावे। यदि ऐसा करता है तो वह आहार तो मुनिराज का उद्देश्य कर बना हुआ ही कहलावेगा। औद्देशिक दोष का परिहार मात्र आहार के सम्बन्ध में नहीं, वसतिका, उपकरण आदि के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।**

जैसा कि पूर्व में कहा गया है, निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनियों में भी जितने आवेंगे, उन सभी को भी दूँगा, ऐसा उद्देश्य करना समादेशदोष-युक्त है। इसी बात पर लोगों की यह धारणा बन गई है कि मुनियों के उद्देश्य से बनाया आहार उद्दिष्ट है, किन्तु यह धारणा आगम का रहस्य समझे बिना भ्रान्तियुक्त है। आगम में ऐसा अभिप्राय सर्वथा नहीं है। चार प्रकार के उद्देश्यों में "मुनिजनों के लिए बनाया गया भोजन ओद्देशिक दोष युक्त है" उसका अभिप्राय आचार ग्रन्थों में इस प्रकार कहा है -

"जो मुनि मेरी वसतिका (गृह) में ठहरे हैं या मेरी धर्मशलादि में ठहरे हैं, उन्हें ही मैं आहार दूँगा, अन्य मुनियों को नहीं" इस प्रकार किसी कारणवश मुनिविशेष को लक्ष्यकर उनके उद्देश्य से भोजन बनाकर उन्हें ही देना, सो औद्देशिकदोषयुक्त है। अथवा किसी नवीन वसतिका का निर्माण कराकर यह संकल्प करना कि अमुक मुनिराज को ही ठहराऊँगा, अन्य को नहीं। इसी प्रकार उपकरण आदि के तथा आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक के वस्त्रों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। इस सम्बन्ध में मूलाचार, आचारसार, भगवती आराधना, चारित्रसार, मूलाचार प्रदीप, प्रवचनसार तृतीय अधिकार, षट्प्राभृत, अनगार धर्मामृत, आदि साध्वाचार सम्बन्धी ग्रन्थों का परिशीलन कर उद्दिष्ट-मीमांसा करते हुए अपनी भ्रान्त धारणाओं को मिटाना चाहिए।

जिस प्रकार वस्त्रादि परिग्रह का अभाव साधु के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार उद्दिष्ट या औद्देशिक दोष युक्त आहार, शय्या, उपधि आदि का परित्याग भी परमावश्यक है। इस प्रकार आगमग्रन्थों के स्वाध्याय से उद्दिष्ट-मीमांसा करके यथार्थ मार्ग का अनुकरण करना ही हमारा परमकर्तव्य है।

'आचार्य श्री धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ' से साभार

गुरु

जिसका शरीर वैराग्य से विभूषित है और जो परिग्रह के दुष्ट संसर्ग से रहित होता हुआ अपरिमित ज्ञान का स्वरूप है, उसे गुरु जानना चाहिए।

'वीरदेशना'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन परंपरा में वर्षावास

डॉ. फूलचन्द जैन, प्रेमी, वाराणसी

जैन श्रमणपरम्परा में वर्षावास का अत्यन्त महत्त्व है और यह आध्यात्मिक जागृति का महापर्व है, जिसमें स्व-परहित-साधन का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। यही कारण है कि वर्षावास को मुनिचर्या का अनिवार्य अंग और महत्त्वपूर्ण योग माना गया है। इसीलिए इसे वर्षायोग अथवा चातुर्मास भी कहा जाता है। श्रमण के दस स्थितिकल्पों में अन्तिम पर्युषणाकल्प है, जिसके अनुसार वर्षाकाल के चार महीने भ्रमण का त्याग करके एक स्थान पर रहने का विधान है।[1] वर्ष के बारह महीनों को छह ऋतुओं में विभाजित किया गया है। यथा 1.बसंत ऋतु (चैत्र-वैशाख माह), 2.ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ-आषाढ़), 3.वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद), 4. शरद् ऋतु (आश्विन-कार्तिक), 5.हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष-पौष) तथा 6. शिशिर ऋतु (माघ-फाल्गुन माह)। तथा वर्ष को मौसम की दृष्टि से प्रमुख तीन भागों में विभाजित किया गया है। यथा -1. ग्रीष्म-चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़। 2. वर्षा - श्रावण, भाद्रपद, आश्विन तथा कार्तिक। 3. शीत-मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन। यद्यपि ये तीनों ही विभाजन चार-चार माह के हैं, किन्तु वर्षाकाल के चार महीनों का एकत्र नाम ''चातुर्मास'', वर्षावास आदि रूप में प्रसिद्ध है।

श्वेताम्बरपरम्परा में ''पर्युषणा कल्प'' नाम से वर्षावास का वर्णन प्राप्त होता है। बृहत्कल्पभाष्य में इसे ''संवत्सर'' कहा गया है।[2] वस्तुतः वर्षाकाल में आकाश मण्डल में घटाएँ छायी रहती हैं। तथा प्रायः वर्षा भी निरन्तर होती रहती है। इससे यत्र-तत्र भ्रमण या विहार के मार्ग रुक जाते हैं, नदी-नाले उमड़ पड़ते हैं। वनस्पतिकाय आदि हरितकाय मार्गों और मैदानों में फैल जाती हैं। सूक्ष्म-स्थूल जीव-जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। अतः किसी भी परजीव की विराधना तथा आत्मविराधना (घात) से बचने के लिए श्रमणधर्म में वर्षाकाल में एकत्र-वास का विधान किया गया है। यही समय एक स्थान पर स्थिर रहने का सबसे उत्कृष्ट समय होता है।

श्रमण और श्रावक, दोनों के लिए इस चातुर्मास का धार्मिक तथा आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से महत्त्व है। इसीलिए श्रमण या उनके संघ के चातुर्मास (वर्षा योग) को श्रावक उसी प्रकार प्रिय और हितकारी अनुभव करते हैं, जिस प्रकार चकवा चन्द्रोदय को, कमल सूर्य को और मयूर मेघोदय को।

वर्षावास का औचित्य - अपराजित सूरि ने कहा है कि वर्षाकाल में स्थावर और जंगम सभी प्रकार के जीवों से यह पृथ्वी व्याप्त रहती है। उस समय भ्रमण करने पर महान् असंयम होता है। वर्षा और शीत वायु (झंझावात) से आत्मा की विराधना होती है। वापी आदि जलाशयों में गिरने का भय रहता है। जलादि में छिपे हुए ठूँठ, कण्टक आदि से अथवा जल, कीचड़ आदि से कष्ट पहुँचता है।[3] आचारांग में कहा है-वर्षाकाल आ जाने पर तथा वर्षा हो जाने से बहुत से प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत से बीज अंकुरित हो जाते है। मार्गों में बहुत से प्राणी तथा बीज उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत हरियाली उत्पन्न हो जाती है। ओस और पानी बहुत स्थानों में भर जाता है। पाँच प्रकार की काई आदि स्थान-स्थान पर व्याप्त हो जाती है। बहुत से स्थानों पर कीचड़ या पानी से मिट्टी गीली हो जाती है। मार्ग रुक जाते हैं, मार्ग पर चला नहीं जा सकता। मार्ग सूझता नहीं है। अतः इन परिस्थितियों को देखकर मुनि को वर्षाकाल में एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार नहीं करना चाहिए। अपितु वर्षाकाल में यथावासर वसति में ही संयत रहकर वर्षावास व्यतीत करें।[4] बृहत्कल्पभाष्य के अनुसार वर्षावास में गमन करने में षट्कायिक जीवों का घात तो होता ही है, साथ ही वृक्ष की शाखा आदि सिर पर गिरने, कीचड़ मे रपट जाने, नदी में बह जाने, काँटा आदि लगने के भय रहते हैं। श्रमण को प्रत्येक कल्पनीय कार्य करते समय अहिंसा और विवेक की दृष्टि रखना अनिवार्य है। वर्षाकाल में विहार करते रहने में अनेक बाधाओं के साथ ही जीव-हिंसा की बहुलता सदा रहती है। इसीलिए वर्षाकाल के चार माह तक एक स्थान पर स्थिर रहकर वर्षा-योग धारण का विधान है। जैन परम्परा के साथ ही प्रायः सभी भारतीय परम्पराओं के धर्मों में साधुओं को वर्षाकाल के चार माह में एक स्थान पर स्थित रहकर धर्म-साधन करने का विधान है।

वर्षायोग-ग्रहण एवं उसकी समाप्ति - यद्यपि मूलाचार आदि ग्रन्थों में वर्षायोग-ग्रहण आदि की विधि का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु उत्तरवर्ती ग्रन्थ 'अनगार-धर्मामृत' में कहा है कि आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की रात्रि के प्रथम प्रहर में पूर्व आदि चारों ओर दिशाओं में प्रदक्षिणा-क्रम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघु चैत्यभक्ति चार बार पढ़कर सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, पंचगुरूभक्ति और शान्तिभक्ति करते हुए आचार्य आदि साधुओं को वर्षायोग-ग्रहण करना चाहिए।[6] आगे बताया है कि वर्षायोग के सिवाय अन्य हेमन्त आदि ऋतुओं में ऋतुबद्धकाल में श्रमणों का एक स्थान में एक मास तक रुकने का विधान है। जहाँ चातुर्मास करना अभीष्ट हो, वहाँ आषाढ़ मास में वर्षायोग के स्थान पर पहुँच जाना चाहिए तथा मार्गशीर्ष महीना बीतने पर वर्षायोग के स्थान को छोड़ देना चाहिए। कितना ही प्रयोजन होने पर भी वर्षायोग के स्थान में श्रावण कृष्णा चतुर्थी तक अवश्य पहुँच जाना चाहिए। इस तिथि का उल्लंघन नहीं करना चाहिए तथा कितना ही प्रयोजन होने पर भी कार्तिक शुक्ला पंचमी तक वर्षायोग के स्थान से अन्य स्थान को नहीं जाना चाहिए। यदि किसी दुर्निवार उपसर्ग आदि के कारण वर्षायोग के उत्तम प्रयोग में अतिक्रम करना पड़े, तो साधु को प्रायश्चित लेना चाहिए।[7]

वर्षायोग-धारण के विषय में श्वेताम्बरपरम्परा के कल्पसूत्र में कहा है कि मासकल्प से विचरते हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को आषाढ़ मास की पूर्णिमा को चातुर्मास के लिए बसना कल्पता है। क्योंकि निश्चय ही वर्षाकाल में मासकल्प विहार से विचरनेवाले साधुओं और साध्वियों के एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों की विराधना होती है।[8] कल्पसूत्रनिर्युक्ति में भी कहा है कि आषाढ़ मास की पूर्णिमा तक नियत स्थान पर पहुँच कर श्रावणकृष्णा पंचमी से वर्षावास प्रारम्भ कर देना चाहिए। उपयुक्त क्षेत्र न मिलने पर श्रावणकृष्णा दशमी से पाँच-पाँच दिन बढ़ाते-बढ़ाते भाद्रशुक्ला पंचमी तक तो निश्चित ही वर्षावास प्रारम्भ कर देना चाहिए, फिर चाहे वृक्ष के नीचे ही क्यों न रहना पड़े। किन्तु इस तिथि का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।[9]

वर्षावास का समय - सामान्यत: आषाढ़ से कार्तिक पूर्वपक्ष तक का समय वर्षा और वर्षा से उत्पन्न जीव-जीवाणुओं तथा अनन्त प्रकार के तृण, घास तथा जन्तुओं के पूर्ण परिपाक का समय रहता है। इसीलिए चातुर्मास (वर्षावास) की अवधि आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी की पूर्वरात्रि से आरम्भ होकर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पश्चिम रात्रि तक मानी जाती है।

वर्षावास के समय में एक सौ बीस दिन तक एक स्थान पर रहना उत्सर्ग मार्ग है। विशेष कारण होने पर अधिक और कम दिन भी ठहर सकते हैं।[10] अर्थात् आषाढ़ शुक्ला दसमी से चातुर्मास करनेवाले कार्तिक की पूर्णमासी के बाद तीस दिन तक आगे भी सकारण एक स्थान पर ठहर सकते हैं। अधिक ठहरने के प्रयोजनों में वर्षा की अधिकता, शास्त्राभ्यास, शक्ति का अभाव अथवा किसी की वैयावृत्य करना आदि है।[11] आचारांग में भी कहा है कि वर्षाकाल के चार माह बीत जाने पर अवश्य विहार कर देना चाहिए, यह तो श्रमण का उत्सर्ग मार्ग है। फिर भी यदि कार्तिक मास में पुन: वर्षा हो जाए और मार्ग आवागमन के योग्य न रहे तो चातुर्मास के पश्चात् वहाँ पन्द्रह दिन और रह सकते हैं।[12]

स्थानांगसूत्र की दृष्टि से वर्षावास के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ये तीन भेद बताये हैं। इनमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमण (भाद्रपद-शुक्लापंचमी) से कार्तिक पूर्णमासी तक, सत्तर दिनों का जघन्य वर्षावास कहा जाता है। श्रावण से कार्तिक तक, चार माह का मध्यम चातुर्मास है तथा आषाढ़ से मृगसर-छह माह का उत्कृष्ट वर्षावास कहलाता है। इसके अन्तर्गत आषाढ़ बिताकर वहीं चातुर्मास करें और मार्गशीर्ष में भी वर्षा चालू रहने पर उसे वहीं बिताएँ।[13] स्थानांग वृत्ति में कहा है कि प्रथम प्रावृट् (आषाढ़) में और पर्युषणाकल्प के द्वारा निवास करने पर विहार न किया जाए, क्योंकि पर्युषणाकल्पपूर्वक निवास करने के बाद भाद्रशुक्ला पंचमी से कार्तिक तक साधारणत: विहार नहीं किया जा सकता, किन्तु पूर्ववर्ती पचास दिनों में उपयुक्त सामग्री के अभाव में विहार कर भी सकते हैं।[14]

बृहत्कल्पभाष्य में वर्षावास समाप्ति तक विहार करने के समय के विषय में कहा है कि जब ईख बाड़ों के बाहर निकलने लगें, तुम्बियों में छोटे-छोटे तुंबक लग जायें, बैल शक्तिशाली दिखने लगें, गाँवों की कीचड़ सूखने लगे, रास्तों का पानी कम हो जाए, जमीन की मिट्टी कड़ी हो जाय तथा जब पथिक परदेश को गमन करने लगें तो श्रमण को भी वर्षावास की समाप्ति और अपने विहार करने का समय समझ लेना चाहिए।[15]

वर्षावास के मुख्य स्थान - श्रमण को वर्षायोग के धारण का उपयुक्त समय जानकर धर्म-ध्यान और चर्या आदि के अनुकूल योग्य प्रासुक स्थान पर चातुर्मास व्यतीत करना चाहिए। आचारांगसूत्र में चातुर्मास योग्य स्थान के विषय में कहा है कि वर्षावास करने वाले साधु या साध्वी को उस ग्राम-नगर, खेड़, कर्वट, मडंव, पट्टण, द्रोणमुख, आकर (खदान), निगम, आश्रय, सन्निवेश या राजधानी की स्थिति भलीभाँति जान लेनी चाहिए। जिस ग्राम-नगर यावत् राजधानी में एकान्त में स्वाध्याय करने के लिए विशाल भूमि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न हो, मल-मूत्र त्याग के लिए योग्य विशाल भूमि न हो, पीठ (चौकी) फलक, शय्या एवं संस्तारक की प्राप्ति सुलभ न हो और न प्रासुक (निर्दोष) एवं एषणीय आहार-पानी ही सुलभ हों, जहाँ बहुत से श्रमण ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र और भिखारी पहले से आए हुए हों और भी आने वाले हों, जिससे सभी मार्गों पर जनता की अत्यन्त भीड़ हो, और साधु-साध्वी को भिक्षाटन, स्वाध्याय, शौच आदि आवश्यक कार्यों से अपने स्थान से सुखपूर्वक निकलना और प्रवेश करना भी कठिन हो, स्वाध्याय आदि क्रिया भी निरुपद्रव न हो सकती हो, ऐसे ग्राम-नगर आदि में वर्षाकाल प्रारम्भ हो जाने पर भी वर्षावास व्यतीत न करे।[16] कल्पसूत्र कल्पलता के अनुसार वर्षावास के योग्य स्थान में निम्नलिखित गुण होना चाहिए - जहाँ विशेष कीचड़ न हो, जीवों की अधिक उत्पत्ति न हो, शौच-स्थल निर्दोष हो, रहने का स्थान शान्तिप्रद एवं स्वाध्याय योग्य हो, गोरस की अधिकता हो, जनसमूह भद्र हो, राजा धार्मिक वृत्ति का हो, भिक्षा सुलभ हो, श्रमण-ब्राह्मण का अपमान न होता हो आदि।

वर्षावास में भी विहार करने के कारण = अपराजितसूरि के अनुसार वर्षायोग धारण कर लेने पर भी यदि दुर्भिक्ष पड़ जाय, महामारी फैल जाये, गाँव अथवा प्रदेश में किसी कारण से उथल-पुथल हो जाय, गच्छ का विनाश होने के निमित्त मिल जायें, तो देशान्तर में जा सकते हैं। क्योंकि ऐसी स्थिति में वहाँ ठहरने से रत्नत्रय की विराधना होगी। आषाढ़ की पूर्णमासी बीतने पर प्रतिपदा आदि के दिन देशान्तर गमन कर सकते हैं।[18] स्थानांगसूत्र में इसके पाँच कारण बताये हैं - 1. ज्ञान के लिए, 2. दर्शन के लिए, 3. चारित्र के लिए, 4. आचार्य या उपाध्याय की मृत्यु के अवसर पर तथा, 5. वर्षा क्षेत्र के बाहर रहे हुए आचार्य अथवा उपाध्याय की वैयावृत्य करने के लिए।[19] और भी कहा है कि निर्ग्रंथ और निर्ग्रन्थियों को प्रथम प्रावृट् चातुर्मास के पूर्वकाल में ग्रानानुग्राम विहार नहीं करना चाहिए। किन्तु इन पाँच कारणों से विहार किया भी जा सकता है-

1. शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर, 2. दुर्भिक्ष होने पर, 3. किसी के द्वारा व्यथित किये जाने पर अथवा ग्राम से निकाल दिये जाने पर, 4. बाढ़ आ जाने पर तथा 5. अनार्यों द्वारा उपद्रव किये जाने पर।[20]

इस प्रकार वर्षावास के विषय में जैन आचार शास्त्रों में यह विवेचन प्राप्त होता है। श्रमण के वर्षावास का समय उसी प्रकार कषायरूपी अग्नि को एवं मिथ्यात्व रूपी ताप को त्याग एवं वैराग्य की शीतल धारा से तथा स्वाध्याय और ध्यान की जलवृष्टि से शान्त करने का होता है, जिस प्रकार जल की शीतल धारा बरस कर धरती की तपन शान्त करती है।

सन्दर्भ -

1. ''वर्षाकालस्य चतुर्षु मासेषु एकत्रैवावस्थानं भ्रमणत्यागः।'' भगवती आराधना। वि. टी. 421/पृष्ठ 618, मूलाचार वृत्ति 10/18।
2. बृहत्कल्पभाष्य 1/36।
3. भ. आ./वि. टीका 421, पृ. 618।
4. आचारांग सूत्र 2/3/1/111।
5. बृहत्कल्पभाष्य भाग 3 गाथा 2736-2737।
6. अनगारधर्मामृत 9/66-67।
7. अनगार धर्मामृत 9/68-69।
8. ''कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा एवं विहेणं विहारेरेणं विहरमाणाणं आसाढपुण्णिमाए वासावासं वसित्तए।'' कल्पसूत्र सूत्र 17, पृ. 74 (कल्पमंजरी टीका सहित)।
9. कल्पसूत्र निर्युक्ति गाथा 16, कल्पसूत्र चूर्णि पृ. 89।
10. भ. आ. वि. टीका 421।
11. वही।
12. आचारांग 2/3/1/113, पृ. 1064।
13. स्थानांग 5/61-62।
14. स्थानांग वृत्ति पत्र 294, 295।
15. बृहत्कल्पभाष्य भाग, 2, 1/1539-40।
16. आचारांग सूत्र 2/3/1/465।
17. कल्पसूत्र-कल्पलता पं. 3/1 तथा कल्पसमर्थनम् गाथा26।
18. भ. आ. वि. टीका 421, अनगारधर्मामृत ज्ञानदीपिका 9 80-81, पृ. 689।
19. ठाणं 5/100, पृ. 575।
20. वही 5/99, पृ. 574।

'डॉ. लालबहादुर शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ' से साभार

जीव और कर्म इन दोनों का जो अनादिकाल से सम्बन्ध सिद्ध है, उसे नष्ट करने के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रय के अलावा दूसरा और कोई भी समर्थ नहीं है।

'वीरदेशना'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या 'सकांक्ष पूजा' मिथ्यात्व है? एक विवेचन

पं. सुनील कुमार 'शास्त्री'

''जिनभाषित'' नवम्बर 2005 के अंक में प्रकाशित संपादकीय लेख ''साकांक्ष पूजा'' पर बहुत से लोगों से, अनेक प्रकार के प्रश्न प्राप्त हुए हैं। उन सब प्रश्नों का इस लेख के माध्यम से समाधान प्रस्तुत किया जा रहा है -

प्रश्न - क्या 'नवग्रह अरिष्ट निवारक विधान' करना उचित है ?

उत्तर - इस प्रश्न के उत्तर में यह विचार करना अति आवश्यक है कि क्या जैन शास्त्रों में सूर्य, चन्द्र आदि नवग्रह मान्य हैं, या नहीं ? लोक में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहू, केतु ये नवग्रह माने जाते हैं। जबकि जैन-आगम में चन्द्रमा को इन्द्र, सूर्य को प्रतीन्द्र और बुध, शुक्र आदि 88 ग्रहों का वर्णन पाया जाता है। इससे यह सिद्ध है कि नवग्रह मानने की परम्परा वैदिक है, जैन-आगम सम्मत नहीं। श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार में इस प्रकार कहा है -

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते॥ 23॥

अर्थ - जो अपने को अच्छा लगता है उसे वर कहते हैं। वर की इच्छा करके आशावान् होकर जो रागद्वेष से मलिन देवताओं का सेवन करता है, पूजन करता है, उसे देवतामूढ़ कहते हैं और उसका कार्य देवमूढ़ता कहलाता है। अर्थात् किसी भी आशा से सहित होकर सूर्य-चन्द्र आदि की पूजा करना देवमूढ़ता है। अब आप स्वयं सोचें कि क्या देवमूढ़ता के सेवन से कष्टों का निवारण करना संभव है ? उत्तर - कदापि संभव नहीं।

यद्यपि 'नवग्रह अरिष्ट निवारक विधान' में चौबीस तीर्थंकरों की पूजा का ही वर्णन है। परन्तु उनको 'सर्वग्रह अरिष्ट निवारक' कहना आगमसम्मत नहीं है। 'नवम्बर 2005 के जिनभाषित' के पेज नं. 3 पर लिखा है, 'मिथ्यादृष्टि तो भोगाकांक्षा के निदानबंधस्वरूप शुभपरिणाम करता है, जबकि सम्यग्दृष्टि जीव ख्याति-पूजा-लाभ-भोगाकांक्षा-निदान-बंध-रहित होकर पंचपरमेष्ठी के गुणस्मरणादिरूप शुभोपयोग करता है।' पूजा-पाठ आदि शुभ कार्य करने के तीन कारण होते हैं- 1. सांसारिक भोगों की प्राप्ति 2. आए हुए कष्टों से मुक्ति 3. आत्मकल्याण। इनमें सांसारिक भोगों की प्राप्ति के लिए धार्मिक अनुष्ठान करनेवाला जीव तो मिथ्यादृष्टि ही है। यदि कोई जीव कष्ट निवाराणार्थ, जैसे यदि मंदिर से मूर्ति चोरी हो जाए, यदि कोई धार्मिक संकट उपस्थित हो जाये, यदि शरीर में कोढ़ आदि ऐसी व्याधियाँ, जो धार्मिक क्रियाकलापों के करने में बाधा उत्पन्न करती हैं आदि, तो इन संकटों के निवारणार्थ, सम्यग्दृष्टि जीव पूजा-अनुष्ठान आदि कर सकता है। इसके अलावा शुद्ध सम्यग्दृष्टि तो आत्मकल्याण के लिए ही पूजा-अनुष्ठान आदि करता है। उसका मुख्य कारण विषय-कषायों को रोकना और शुद्धात्म भावना की सिद्धि करना होता है। अतः नवग्रह द्वारा दिये गये दुःखों के निवारण के लिये कोई भी विधान करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

प्रश्न - क्या ये 'नवग्रह' हम संसारी जीवों को दुख देने की सामर्थ्य रखते हैं ?

उत्तर - इसके उत्तर में कार्तिकेयानुप्रेक्षा की निम्न गाथा बहुत उपयोगी है :-

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणादि॥ 319॥

भत्तीए पुज्जमाणो विंतर-देवो वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेद सद्दिट्ठी॥ 320॥

अर्थ - न तो कोई (शिव-विष्णु-ब्रह्मा-यक्ष-क्षेत्रपाल तथा सूर्य-चन्द्रमा एवं ग्रह आदि) जीव को लक्ष्मी देता है और न कोई उसका उपकार करता है। **शुभाशुभ कर्म ही जीव का अपकार और उपकार करते हैं॥ 319॥**

सम्यग्दृष्टि विचारता है कि यदि भक्तिपूर्वक पूजा करने से व्यंतर देवी-देवता भी यदि लक्ष्मी दे देते, तो फिर धर्म करने की क्या-आवश्यकता॥ 320॥

उपर्युक्त दोनों गाथाएँ तो यह स्पष्ट उल्लेख कर रही हैं कि सूर्य-चन्द्र व ग्रह आदि जीव का उपकार या अपकार नहीं करते। सच तो यह है कि इन सूर्य-चन्द्र आदि की गति आदि के द्वारा जीवों का भविष्य जाना जा सकता है, और यही ज्योतिष विद्या का कार्य है। ऐसा नहीं है कि यदि कोई ज्योतिषी ग्रह आदि के आधार से किसी के बुरे भविष्य को बताये, तो उस ग्रह आदि की पूजा करने से वह संकट टल जायेगा। **असातावेदनीय कर्म के उदय से आया हुआ संकट, इन ग्रहों की पूजा करने से बढ़ तो सकता है, परन्तु घटना कदापि संभव नहीं है।** उदाहरणार्थ पूज्य आ. श्री विद्यासागर जी महाराज का निम्न संस्मरण उपादेय है- पूज्य आचार्य श्री से एक सज्जन ने पूछा 'महाराज, मुझ पर नवग्रह का प्रकोप है। मुझे इससे बचने के लिए क्या करना चाहिए।' आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ने कहा 'ग्रह नौ क्यों मानते हो दस मानो। दसवाँ ग्रह परिग्रह है। इसको छोड़ दो, तो कोई ग्रह तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा।' सारांश यह है कि ये 'नवग्रह' हमें दुख देने की सामर्थ नहीं रखते।

प्रश्न - क्या शांतिविधान करना उचित है ?

उत्तर - इस संबंध में यदि आप गौर से 'शांतिविधान' के सभी अर्घों को देखेंगे, तो उनमें यह कहीं भी नहीं लिखा है कि मेरी सांसारिक परेशानियाँ दूर करें या मुझे सांसारिक सुखों की प्राप्ति कराएँ। 'शांतिविधान' के सभी अर्घों का तात्पर्य यही है कि सभी सांसारिक दु:खों को दूर करनेवाले तथा सभी प्रकार के सांसारिक एवं आत्मिक सुखों को प्रदान करने वाले 'शांतिनाथ भगवान्' को अर्घ समर्पित करता हूँ। इन अर्घों में कही भी सांसारिक सुखों की कामना नहीं है। केवल भक्तिभाव से पूजा करने के फल का वर्णन है। अत: 'शांतिनाथ विधान' करना अनुचित कैसे कहा जा सकता है?

प्रश्न - प्रतिक्रमण पाठ तथा अन्य स्तोत्र आदि भी तो आचार्यों ने दु:खों के नाश के लिए फिर क्यों लिखे ?

उत्तर - प्रतिक्रमण पाठ में जो 'दुक्खक्खओ कम्मक्खओ' आदि पाठ आता है, उसमें 'दु:खों का क्षय हो' इसके अन्तर्गत जन्म-जरा और मृत्यु इन दुखों के नाश होने की भावना है अर्थात् संसार भ्रमण के नष्ट होने की भावना है, कोई पुत्रसंबंधी, धनसंबंधी या परिवारसंबंधी दुखों के नाश होने की भावना नहीं है। मैनासुंदरी से भी मुनिराज ने यही कहा था कि तुम सिद्धचक्रविधान करो, इससे समस्त पाप कर्मों का नाश होता है। मैनासुंदरी ने यदि बिना निदान के, विधान न किया होता तो शायद ऐसा फल देखने में न आता। आ. शांतिसागर महाराज ने भी एक व्यक्ति के सफेद दाग दूर करने के लिए एकीभाव स्तोत्र पाठ करने के लिए उपदेश दिया था, क्योंकि वह सफेद दाग के कारण धार्मिक अनुष्ठान नहीं कर पाता था। सीताजी ने भी अग्निशिखा को जल बनाने के लिए प्रभुस्तवन नहीं किया था। इन सब प्रसंगों में दु:खों के नाश के लिये भक्ति नहीं की गई थी। ये सब प्रसंग बताते हैं कि निष्कांक्ष भक्ति करने वालों के दु:ख स्वयमेव नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न - वर्तमान में बहुत से साधु एवं आर्यिकाएँ फिर हमारे दु:खों को दूर करने के लिए मंत्र क्यों देते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में बहुत से साधु एवं आर्यिका आदि पुत्रप्राप्ति के लिए , व्यापारसमृद्धि या धनप्राप्ति के लिए, मुकदमा जीतने के लिए जो मंत्र-जाप आदि करने की राय देते हैं वह आगमदृष्टि से उचित नहीं है।

उपर्युक्त परिस्थितियों के उपस्थित होने पर ज्ञानी तो इसे पापकर्मों के उदय का फल जानकर शांति से, समतापूर्वक सहन करता है। ज्ञानी जीव विषय-कषायों की इच्छा रहित होता हुआ पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि करता है, क्योंकि वह जानता है कि 1. प्रभुभक्ति से असातवेदनीय का साता में संक्रमण हो जाता है। 2. असातावेदनीय का अनुभाग क्षीण हो जाता है। 3. सातावेदनीय का बंध होता है। ये तीनों कारण सांसारिक दुखों के नाश एवं सुखों की प्राप्ति में हेतु है। इसलिए ज्ञानीजीव विषय-कषाय दूर करने के लिए तथा शुद्धात्मभावना की साधना के लिए पंचपरमेष्ठी के गुणस्मरणादिरूप शुभोपयोगपरिणाम करता है। उदाहराणार्थ इस संबंध में पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का निम्न संस्मरण परम उपादेय है - एक प्रतिमाधारी सज्जन बड़े दु:खी मन से पूज्य आचार्य श्री से कह रहे थे, 'मैंने आपसे पाँच लाख रुपये की संपत्ति का नियम लिया था और व्यापार छोड़ दिया था। जिसके पास ब्याज की आमदानी के लिए रुपये जमा करवाए थे, वह पार्टी फेल हो गई है। अब मैं बड़ा दु:खी हूँ, क्या करूँ? कोई मन्त्र आदि बता दीजिए ताकि संकट दूर हो जाये।' पूज्य आचार्य श्री यह सब सुनकर मुस्कराए और बोले '**अब तो आनंद आ गया। रुपयों से तो पीछा छूट ही गया, कपड़ों को और छोड़ दो और मेरे पास आ जाओ। सारे संकट तुरंत समाप्त हो जायेंगे।**' आगमनिष्ठ शुद्ध चारित्र पालनेवाले आचार्यों एवं मुनि-आर्यिकाओं का उत्तर उपर्युक्त प्रकार ही होना चाहिए ताकि लौकिकजन सांसारिक सुखों में उपादेयता मानना छोड़ दें।

वर्तमान में मुनिभक्ति का रूप एकदम बदल गया है। अधिकांश साधर्मी भाइयों का लक्ष्य यही रहता है कि महाराज की भक्ति से हमारे सांसारिक धन-संबंधी, शरीर संबंधी, कोर्ट-कचहरी संबंधी दुख नष्ट हो जायें। ये महाराज कोई ऐसा मंत्र दे दें, जिससे हमें अमुक कार्य की सिद्धी हो जाय। इस माहौल को देखकर अधिकांश साधु भी श्रावकों को आकर्षित करने के लिये, उनको यंत्र-मंत्र आदि देने लगे हैं, जो आगमदृष्टि से कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। यह हमारे समाज के दुर्भाग्य का सूचक है। वीतरागता का पाठ पढ़ाने वाले निर्ग्रन्थ साधु ही यदि हमें भोगों की प्राप्ति में सहायक बन जायेंगे, तो फिर त्याग-तपस्या का पाठ कौन पढ़ायेगा?

अत: सांसारिक भोगों की प्राप्ति के लिये 'साकांक्ष' पूजा करना मिथ्यात्व ही है और सम्यक्त्व को नष्ट करने में कारण है।

972, सेक्टर-7 आवास विकास कालोनी, आगरा
मो. - 9411206855

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शांतिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र बजरंगढ़

श्रेष्ठी पाड़ा शाह द्वारा निर्मित 800 वर्ष प्राचीन जिनालय के गर्भगृह में स्थित श्री अरहनाथ, श्री शान्तिनाथ एवं श्री कुन्थुनाथ की 18 फीट ऊँची प्रतिमाएँ

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण एवं सुरम्य पहाड़ियों की तलहटी में स्थित ऐतिहासिक नगरी बजरंगगढ़ आज पूरे विश्व में दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र के रूप में प्रसिद्धि पा चुकी है। प्रदूषण एवं कोलाहल से दूर पलाश एवं अन्य घने वृक्षों की छाया से घिरे तथा आज पूरी तरह खंडहरों का गाँव बन चुके बजरंगगढ़ की गौरव गाथा इस अतिशय क्षेत्र के कारण पुनः जनमानस को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। जिला मुख्यालय गुना से मात्र 7 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण दिशा में गुना-आरोन-सिरोंज मार्ग पर स्थित इस अतिशय क्षेत्र का इतिहास 8 शताब्दी प्राचीन है। किले के नीचे नदी तट पर बसे इस ऐतिहासिक ग्राम में पाड़ाशाह द्वारा निर्मित भव्य जैन मंदिर स्थित है। इसके गर्भगृह में 12 वीं सदी की शांत मुद्रा में 18 फीट उत्तुंग खड्गासन मुद्रा की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। जो भक्तजनों को वीतरागता का अनुपम उपदेश देती रहती हैं। ये विहंगम प्रतिमाएँ लाल पाषाण से निर्मित तथा ध्यानस्थ एवं अतिशययुक्त हैं।

गुफा में स्थित ये प्रतिमाएँ मन को भक्ति रस से सरावोर कर असीम शांति पहुँचाती हैं। इनके चहुँ ओर भित्तियों में स्थापित अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ वास्तुकला का अनुपम उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त शिलालेख, भित्तिचित्र भी कला के सुंदर नमूने हैं। कला और अध्यात्म का यहाँ दुर्लभ संयोग है। पौराणिक कथानकों पर आधारित ये चित्र अपनी निर्मिति में पूर्णतः मौलिक एवं अद्वितीय हैं।

संवत् 1236 में श्री पाड़ाशाह द्वारा बजरंगढ़ में श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर के निर्माण एवं प्रतिमाओं की स्थापना के अलावा थूबोनजी, चंदेरी, पपोराजी (म.प्र.) तथा चाँदखेड़ी (राजस्थान) में भी कई जिनालयों का निर्माण कराया गया था। इतिहास में ऐसा उल्लेख मिलता है कि पाड़ाशाह के पड़े इस क्षेत्र में रात्रि में रुके थे और एक पड़े की लोहे की जंजीर स्वर्ण की हो गयी थी। खोज करने पर उन्हें इस स्थान पर पारस पत्थर की प्राप्ति हुई। इससे प्रभावित होकर उन्होंने यहाँ एक भव्य जैनमंदिर बनाने की प्रतिज्ञा की। यह क्षेत्र पाड़ाशाह की उदारता, निष्ठा एवं शिल्पज्ञों की कार्यकुशलता का ज्वलंत प्रमाण है। इसका प्राचीन नाम जैननगर था। लेकिन बांद में किले के भीतर स्थापित बजरंग मंदिर के नाम पर इसका नामकरण बजरंगढ़ हुआ। पूर्व में यह जिला मुख्यालय भी रहा है। वर्तमान में यहाँ के अधिसंख्य जैन परिवार गुना में बस गए।

निश्चय ही ऐसे स्थल हमारी संस्कृति की अनुपम धरोहर होते हैं। इनका संरक्षण-संवर्द्धन करना हर नागरिक का कर्त्तव्य है। इसी उद्देश्य से दिगम्बराचार्य 108 श्री विद्यासागरजी मुनिराज के पटुशिष्य मुनि 108 श्री सुधासागरजी महाराज एवं ऐलक 105 श्री निःशंकसागर जी के सान्निध्य में सन् 1992 में इन प्रतिमाओं का जीर्णोद्धार किया गया।

अतिशय क्षेत्र में भगवान् श्री शांतिनाथ जी का विशाल रमणीक समवशरण भी है। यह अतिशय क्षेत्र दिगम्बर जैनाचार्य श्री गणधरस्वामी की तपोभूमि भी रहा है। प्रतिवर्ष यहाँ कार्तिक वदी पंचमी को देवाधिदेव जिनेन्द्रदेव के विमानोत्सव का विशाल चलसमारोह आयोजित किया जाता है। जिसमें दूरस्थ स्थलों से हजारों नरनारी उत्साहपूर्वक शामिल होते हैं। प्रतिवर्ष जेठ वदी 14 को भगवान श्री शांतिनाथ जी के जन्म, तप एवं मोक्ष कल्याणक के अवसर पर यहाँ महामस्तकाभिषेक समारोहपूर्वक आयोजित किया जाता है। इसी प्रकार पर्यूषण पर्व के अंतिम दिन भादों सुदी चतुर्दशी को पालकी जी में श्री जी की शोभायात्रा का कार्यक्रम आयोजित किया जाता है।

यहाँ दो जैनमंदिर और भी हैं-एक मुख्य बाजार में श्री झीतूशाह द्वारा निर्मित किया गया श्री पार्श्वनाथ जिनालय तथा दूसरा श्री हरिशचन्द्र टरका द्वारा बनवाया गया टरका का मंदिर। लगभग 50 वर्ष पूर्व जैन परिवारों के बजरंगढ़ से बाहर निवास करने के कारण इस मंदिर में स्थापित श्री चंद्रप्रभु भगवान की प्रतिमा गुना जैन मंदिर में प्रतिष्ठित कर दी गई थी। वर्तमान में यह प्रतिमा श्री चंदाप्रभु चैत्यालय मल्हारगंज इन्दौर में स्थापित है। टरकाजी के इस मंदिर में चित्रों द्वारा भव्य चौबीसी बनाई गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मशालाएँ

इस सुप्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र पर दो विशाल धर्मशालाएँ हैं, जिनमें एक श्री शान्तिनाथ अतिशय क्षेत्र से लगी हुई है, जिसमें वैवाहिक, धार्मिक एवं अन्य सामाजिक आयोजनों हेतु पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। साथ ही बाहर से आए यात्रियों के ठहरने का समुचित प्रबन्ध भी है। श्री शांतिनाथ दिगम्बर जिनालय की धर्मशाला में भूतल पर कमरे तथा विशाल बरामदा, एवं प्रथम तल पर कक्षों के अतिरिक्त एक सभाकक्ष है। क्षेत्र पर स्थित एक अन्य धर्मशाला में आचार्य श्री विद्यासागरभवन के नाम से एक विशाल सभाकक्ष है। इस खण्ड में पाँच कमरे, स्नानघर तथा शौचालय की सुविधायुक्त, तीन कमरे भोजन बनाने की व्यवस्था सहित तथा छह अन्य कमरे भी हैं। समस्त कक्ष पलंग, बिस्तर, टेबिल-कुर्सी, पंखों से सुसज्जित हैं।

वृद्धाश्रम

बाजारमंदिर-स्थित धर्मशाला में जैन युवा संगठन, गुना द्वारा वृद्धाश्रम का निर्माण किया गया है। सांसारिक वृत्तियों से उदासीन हो अपने जीवन का अंतिम समय वृद्धजन आत्मकल्याण हेतु व्यतीत कर सकें, इस भावना से निर्मित वृद्धाश्रम शीघ्र ही प्रारंभ किया जा रहा है।

प्रस्तावित निर्माण

बड़े मंदिर में लगा हुआ 90 द 140 फीट का एक भूखंड क्षेत्र समिति द्वारा क्रय किया गया है, जिस पर संतों एवं विद्वजनों के परामर्शानुसार निर्माण कार्य किया जावेगा। इसकी बाउण्ड्री का कार्य वर्तमान में चल रहा है।

यातायात की उपलब्ध सुविधाएँ

1. गुना नगरी, आगरा-बम्बई राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है। ग्वालियर, इन्दौर, उज्जैन और भोपाल से प्रत्येक समय गुना तक आने के लिये यात्री बसें उपलब्ध रहती हैं। गुना, सिरोंज व आरोन से बजरंग गढ़ आने के लिये बसें एवं छोटे वाहन (ऑटो, जीप इत्यादि) हर समय उपलब्ध रहते हैं।

2. गुना नगरी मध्य रेलवे के बीना-कोटा रेल्वे लाइन पर स्थित है। यहाँ आने के लिए बीना, उज्जैन व कोटा से रेल सुविधा उपलब्ध है। इन्दौर से गुना होते हुए ग्वालियर तक इंटरसिटी एक्सप्रेस, मालवा एक्सप्रेस, देहरादून एक्सप्रेस यातायात के प्रमुख साधन के रूप में हैं, जो दिल्ली से गुना को सीधे जोड़ते है।

क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी समिति
द्वारा प्रकाशित विवरण के आधार पर।

सादा जीवन, उच्च विचार

गाँधी जी-राष्ट्रपिता के नाम से विख्यात हुए। एक दिन की बात है, वे घूमने जा रहे थे। वे एक तालाब के किनारे से निकले। उनकी दृष्टि तालाब की ओर गयी। उन्होंने देखा कि एक बुढ़िया ने आधी धोती पहिन रखी है और आधी धो रही है। उसे देखते ही वे करुणासागर में डूब गये। उनकी आँखों में आँसू आ गये।

गाँधी जी ने बुढ़िया की हालत देखकर सोचा कि अरे! इसके पास तो ठीक से पहिनने के लिए भी वस्त्र नहीं है। ओढ़ने की बात तो बहुत दूर है। कितना अभावग्रस्त जीवन है इसका, फिर भी इसने किसी से जाकर अपना दुख नहीं कहा। इतने में ही काम चला रही है।

गाँधी जी ने जब से जनता के दुख भरे जीवन को देखा, तब से उन्होंने ''सादा जीवन प्रारंभ कर दिया''। वे छोटी सी धोती पहिनते थे, जो घुटने तक आती थी।

उनका सादा जीवन, उनके उच्च विचार आदर्श हैं, जनता के लिए। उनके पास ऐसी आँखें थीं जिनमें करुणा का जल छलकता रहता था। यथार्थ में धर्म यही है कि दीन दुखी जीवों को देखकर आँखों में करुणा का जल छलक आये, अन्यथा छिद्र तो नारियल में भी हुआ करते हैं। दयाहीन आँखें नारियल के छिद्र के समान हैं।

'विद्याकथकुञ्ज'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-सामाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता : नवीन चन्द्र जैन, दिल्ली।

जिज्ञासा : क्या उपशम सम्यक्त्व के साथ मतिज्ञान संभव है?

समाधान : उपशम सम्यक्त्व दो प्रकार का होता है। १. प्रथमोपशम सम्यक्त्व- मिथ्यादृष्टि जीव को जो उपशम सम्यक्त्व होता है, वह प्रथमोपशम कहलाता है। 2. द्वितीयोपशम सम्यक्त्व- क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव को उपशम-श्रेणी आरोहण से पूर्व जो उपशमसम्यक्त्व होता है, वह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है।

उपर्युक्त दोनों उपशम सम्यक्त्वों में से, प्रथमोपशम सम्यक्त्वी के मन:पर्ययज्ञान नहीं हो सकता, जब कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी के मन:पर्यायज्ञान संभव है। इसका कारण बताते हुए श्री धवला पु. 2, पृष्ठ 727 में इस प्रकार कहा है -''जो वेदकसम्यक्त्व के पीछे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है, उस उपशमसम्यग्दृष्टि के प्रथम समय में भी मन: पर्ययज्ञान पाया जाता है, किन्तु मिथ्यात्व से पीछे आये हुए (प्रथम) उपशमसम्यग्दृष्टि जीव में मन:पर्ययज्ञान नहीं पाया जाता है, क्योंकि, मिथ्यात्व से पीछे आये हुए उपशमसम्यग्दृष्टि के उत्कृष्ट उपशमसम्यकत्व के काल से भी ग्रहण किये गये संयम के प्रथम समय से लगाकर सर्वजघन्य मन:पर्ययज्ञान को उत्पन्न करनेवाला संयम काल बहुत बड़ा है।''

जिज्ञासा : एक जीव के क्या केवल मतिज्ञान ही होना संभव है, जब कि प्रत्येक जीव में कम से कम मति और श्रुत, ये दो ज्ञान तो पाये ही जाते हैं।

समाधान : तत्त्वार्थ सूत्र (अध्याय 1/30) में कहा है, **'एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य:'**। अर्थ - एक आत्मा में एक को आदि लेकर एक साथ चार ज्ञान तक भजनीय हैं। भावार्थ - यदि एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान, दो हों तो मति एवं श्रुत, तीन हों तो मति, श्रुत, अवधि या मति, श्रुत एवं मन:पर्यय तथा चार हों तो मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय।

उपर्युक्त सामान्य अर्थ के अनुसार प्रत्येक संसारी जीव के मति एवं श्रुत ये दोनों ज्ञान अवश्य पाये जाते हैं। परन्तु राजवार्तिक में इस सूत्र की टीका करते हुए अकलंकदेव ने एक विशेष व्याख्या इस प्रकार भी दी है- **'संख्यावचनोऽयमेकशब्द:।' एकमादिर्येषां तानीमान्येकादीनि। कथम्? मतिज्ञानमेकस्मिन्नत्मनि एकम्, यदक्षरश्रुतं द्व्यनेकद्वादशभेदमुपदेशपूर्वकं तद्भजनीयम् स्याद्वा न वेति।'** अर्थ - एक शब्द संख्यावाची है। इसलिए एक है आदि में जिसके वह एकदीनि है। इससे आत्मा में एक अकेला मतिज्ञान भी हो सकता है, क्योंकि उपदेशपूर्वक होनेवाला जो दो-अनेक-बारह भेद रूप अक्षरश्रुत है वह भजनीय है, अर्थात् किसी के होता है और किसी के नहीं। भावार्थ - तात्पर्य यह है कि किसी आत्मा में मतिज्ञान तो हो, परन्तु श्रुतज्ञान के अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट, इन दोनों भेदों में से कोई भी ज्ञान न हो, तो इस जीव के केवल एक मतिज्ञान भी संभव है।

यहाँ यह भी जानने योग्य है कि उपर्युक्त कथन आत्मा में लब्धि की अपेक्षा होने वाले ज्ञानों की अपेक्षा है। उपयोग में तो प्रत्येक जीव के एक समय में एक ही ज्ञान हो सकता है, इससे अधिक नहीं। जैसे जब अवधिज्ञानरूप उपयोग रहता है, तब अन्य कोई भी ज्ञान उपयोग में नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : पं. बसंतकुमार शास्त्री, शिवाड़।

जिज्ञासा : तीनों योगों की प्रवृत्ति युगपत् होती है या अलग-अलग ?

समाधान : उपर्युक्त विषय पर श्री धवला पु. 1/279 तथा श्री धवला पु. 7/77 में अच्छा प्रकाश डाला गया है, जिसका भावार्थ यह है कि तीनों योगों की प्रवृत्ति एक साथ नहीं होती है, अन्यथा एक साथ मानने पर आत्मा में योग नहीं बन सकेगा। यदि कोई कहे कि लोक में सिनेमा आदि देखते समय या क्रिकेट का मैच आदि देखते समय तीनों योगों की प्रवृत्ति युगपत् दिखाई देती है? इसका उत्तर यह है कि योग और प्रवृत्ति में अन्तर होता है। मन-वचन-काय के व्यापार को प्रवृत्ति कहते हैं, जब कि आत्मा के प्रयत्न को योग कहा जाता है। प्रवृत्ति तो तीनों योगों की एक साथ हो सकती है, परन्तु आत्मा का प्रयत्नरूप योग एक समय में एक ही होता है। जैसे - किसी यात्री की अटैची कोई चोर लेकर भाग जाता है। वह यात्री उस चोर के पीछे दौड़ भी रहा है, चीख भी रहा है और सोच भी रहा है कि अटैची कैसे मिले। यहाँ तीनों योगों की प्रवृत्ति एक साथ हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रही है, परन्तु आत्मा का प्रयत्नरूप योग केवल एक ही हो सकता है, तीनों नहीं। अर्थात् जब उसका प्रयत्न चीखने रूप रहता है, तब वचन रूप प्रयत्न रहता है, मन एवं काय रूप नहीं। जब तेज दौड़ने रूप प्रयत्न रहता है, तब कायरूप प्रयत्न है, मन एवं वचन रूप नहीं, आदि। इससे यह स्पष्ट है कि योगों की प्रवृत्ति एक साथ होते हुए भी, आत्मा का प्रयत्नरूप योग तो एक समय में एक योग का ही होता है।

जिज्ञासा : कषायों के उदय की अपेक्षा लेश्यायें होती हैं, तो क्षीणकषाय अवस्था में किसी भी प्रकार की लेश्या का अभाव होना चाहिए , जबकि वहाँ शुक्ल लेश्या कही गई है, वह कैसे ?

समाधान : उपर्युक्त के संबंध में स्वार्थसिद्धि 2/6 में इस प्रकार कहा गया है - **'ननु च उपशान्तकषाये सयोगकेवलिनि च शुक्ललेश्यास्तीत्यागमः। तत्र कषायानुरञ्जनाभावादौदयिकत्वं नोपपद्यते। नैष दोषः पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया यासौ योगप्रवृत्तिः कषायानुरञ्जिता सैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते। तदभावादयोगकेवल्यलेश्य इति निश्चीयते।'**

प्रश्न - उपशान्त कषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली गुणस्थान में शुक्ललेश्या है ऐसा आगम है, परन्तु वहाँ पर कषाय का उदय नहीं है, इसलिए औदयिकपना नहीं बन सकता। **उत्तर** - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो योगप्रवृत्ति कषाय के उदय से अनुरंजित है वही यह है। इस प्रकार पूर्वभावप्रज्ञापननय की अपेक्षा उपशान्तकषाय आदि गुणस्थानों में भी लेश्यारूप औदयिक भाव कहा गया है। किन्तु अयोगकेवली के योग प्रवृत्ति नहीं है इसलिए वे लेश्या रहित हैं, ऐसा निश्चय है।

1. श्री धवला पु.1, पृष्ठ 150 में इस प्रकार कहा है ''अकषाय वीतरागियों के केवल योग को लेश्या नहीं कह सकते, ऐसा निश्चय नहीं कर लेना चाहिए; क्योंकि लेश्या में योग की प्रधानता है, कषाय प्रधान नहीं है, क्योंकि वह योग प्रवृत्ति का विशेषण है।''

2. श्री धवला पु. 5, पृष्ठ 105 पर कहा है, ''सचमुच क्षीण-कषाय जीवों में लेश्या के अभाव का प्रसंग आता, यदि केवल कषायोदय से ही लेश्या की उत्पत्ति मानी जाती। किन्तु शरीरनामकर्म के उदय से उत्पन्न योग भी तो लेश्या माना गया है, क्योंकि यह भी कर्मबन्ध में निमित्त होता है। इस कारण कषायों के नष्ट हो जाने पर भी योग रहता है, इसलिए क्षीणकषाय जीवों के लेश्या मानने में कोई विरोध नहीं आता।''

4. श्री धवला पु.1, पृष्ठ 191 पर इस प्रकार शंका की गई है कि जिन जीवों की कषाय क्षीण (नष्ट) अथवा उपशान्त हो गई है, उनके शुक्ललेश्या का होना कैसे संभव है ? इसका समाधान - नहीं, क्योंकि जिन जीवों की कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है, उनमें कर्मलेप का कारण योग पाया जाता है, इसलिए इस अपेक्षा से उनके शुक्ललेश्या मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है।

उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार जो आत्मा को कर्मों से लिप्त करती है, उसे लेश्या कहते हैं। कषाय रहित 11वें, 12वें और 13वें गुणस्थान में योग होने के कारण आस्रव निरन्तर पाया जाता है, इसलिए इन गुणस्थानों में लेश्या का सद्भाव मानना उचित है।

प्रश्नकर्ता : रवीन्द्र कुमार जैन एम.ए., देहरादून।

जिज्ञासा : श्रवणवेलगोला-स्थित भगवान् बाहुबलि की मूर्ति से पूर्व भी क्या ऐसी ही मूर्तियों की उपलब्धि होती है या यह मूर्ति सर्वाधिक प्राचीन है, स्पष्ट करें।

समाधान : पूरे भारतवर्ष मे जितनी भी भगवान् बाहुबली की मूर्तियाँ पाई जाती हैं, उनमें सुंदरता की दृष्टि से श्रवणबेलगोला स्थित भगवान् बाहुबली का जिनबिम्ब अनुपम, अद्वितीय एवं सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु इससे पूर्व भी भगवान् बाहुबली की मूर्तियों के प्रमाण एवं मूर्तियों का सद्भाव पाया जाता रहा है। कुछ ज्ञात मूर्तियाँ इस प्रकार हैं -

1. चम्बल क्षेत्र में मन्दसौर जिले के घुसई स्थान से प्राप्त भ. बाहुबलि की मूर्ति चौथी-पाँचवी शताब्दी की अनुमान की जाती है।

2. संभवतः कदम्बराज रविवर्मा द्वारा पाँचवी शताब्दी में निर्मित 'मन्मथनाथ' (कामदेव या बाहुबलि) का मंदिर सर्वाधिक प्राचीन बाहुबली मंदिर सिद्ध होता है। इससे संबंधित शिलालेख उत्तर कर्नाटक जिले के बनवासी के निकट गुदनापुर ग्राम में प्राप्त हुआ है ।

3. ऐहोल की गुफा में भगवान् बाहुबली की मूर्ति स्थित है, जो लगभग 7 फीट ऊँची है और 7 वीं शताब्दी की मानी जाती है। इसमें भ. बाहुबली की जटायें कन्धों तक प्रदर्शित हैं और उनकी बहिनें लताओं को हटाते हुए दिखाई गई हैं।

4. बादामी के जैन गुफा मंदिर में भी एक आठ फुट ऊँची प्रतिमा है, जो सातवीं-आठवीं शताब्दी की मानी जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5. ऐलोरा-स्थित जैन गुफाओं में भ. बाहुबली की कई प्रतिमाएँ हैं, जो आठवीं-नौंवी शताब्दी की मानी जाती है।

6. हुमचा में 898 ईसवी में राजा विक्रम सान्तर ने एक विशाल 'बाहुबली वसदि'बनवाई थी, जिसकी अब केवल चौकी ही शेष रह गई है और बाहुबलि की जीर्ण 5 फुट ऊँची प्रतिमा अब कुन्दकुन्द विद्यापीठ भवन में रखी हुई है। इस मूर्ति पर भी जटाएँ प्रदर्शित हैं,किन्तु लताएँ केवल पैरों तक ही उत्कीर्ण हैं।

7. कर्नाटक के गोलकुंडा के खजाना-बिल्डिंग-संग्रहालय में भी 1.73 मीटर ऊँची काले वेसाल्ट पाषाण की मूर्ति है, जो दसवीं शताब्दी की कही जाती है।

8. जूनागढ़ संग्रहालय मे एक मूर्ति प्रदर्शित की गई है, जो नौवीं शताब्दी की कही जाती है।

8. खजुराहो में पार्श्वनाथ मंदिर की बाहरी दक्षिणी दीवाल पर भी भ. बाहुबली की मूर्ति उत्कीर्ण है, जो दसवीं शताब्दी की है।

10. लखनऊ संग्रहालय में भ. बाहुबली की मूर्ति है, जिसका मस्तक और चरण खण्डित है, यह भी 10 वीं शताब्दी की है।

11. इसके अलावा महोबा, देवगढ़, श्रवण गिरि आदि में भ. बाहुबली की कई मूर्तियाँ हैं, जो लगभग 10 वीं शताब्दी की हैं।

इस प्रकार भ. बाहुबलि की चढ़ी हुई बेलवाली विशिष्ट शैली की मूर्तियों के निर्माण की परम्परा ईसा की चौथी शताब्दी से माननी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कामता प्रसाद जैन, मुजफ्फरनगर।

जिज्ञासा : सूक्ष्मजीव न तो किसी से मरते हैं और न किसी को मारते हैं, फिर कामसेवन मे हिंसा क्यों ?

समाधान : कामसेवन में सूक्ष्मजीवों की हिंसा नहीं होती, बल्कि बादर त्रस जीवों की हिंसा होती है। ये त्रस जीव आँखों से दिखाई नहीं पड़ते, इस दृष्टि से इनको सूक्ष्म कहा है। सूक्ष्म जीवों का कोई आधार नहीं होता, अतः किसी भी वस्तु या पदार्थ में पाये जाने वाले जीव बादर ही होते हैं। आलू की सब्जी बनाने में भी बादर निगोदिया जीवों का ही घात होता है। बिजली का पंखा चलाने पर भी बादर वायुकायिक जीवों का तथा अन्य बादर जीवों का ही घात होता है। हिंसा बादर जीवों की ही होती है, सूक्ष्म जीवों की नहीं। कामसेवन में, रज-वीर्य में पाये जाने वाले तथा सेवन के स्थानों में पाये जाने वाले असंख्यात त्रस जीवों का घात होता है।

प्रश्नकर्ता : पं. वसन्तकुमार जी सिवाड़

जिज्ञासा : क्या भ. महावीर के मोक्ष जाने के बाद हुए पाँच श्रुतकेवली उसी भव से मोक्ष गये थे, या अन्य भव से ?

समाधान : श्रुतकेवली उनको कहते हैं, जो सम्पूर्ण श्रुत के अर्थात् अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट के सम्पूर्ण ज्ञाता होते हैं। जबकि केवली वे कहलाते हैं, जिनको केवलज्ञान प्राप्त हो गया होता है। जो केवली होते हैं, वे तो चार अघातिया कर्मों को नष्ट करके उसी भव से नियम से मोक्ष प्राप्त करते हैं, परन्तु श्रुतकेवलियों के उसी भव से मोक्ष प्राप्त करने का नियम नहीं है। श्रुतकेवलियों को उसी भव से भी मोक्ष हो सकता है अथवा वे कुछ ही भव में मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। श्रुतकेवलियों के लिये श्री धवला पु.-9 पृ.-69 से 71 के अनुसार लिखा है कि उनको मिथ्यात्व में गमन होने का अभाव है, अर्थात् उनका सम्यक्त्व शेष संसारकाल में कभी भी नहीं छूटता है।

यहाँ विशेष यह भी है कि पंचमकाल में उत्पन्न जीवों को, उसी भव में मोक्ष प्राप्त होने का निषेध है। अतः इस कारण से भी भ. महावीर के बाद होनेवाले पाँचों श्रुतकेवलियों को, पंचमकाल में उत्पन्न होने के कारण उसी भव से मोक्ष होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

जिज्ञासा : अगुरुलघुत्व तो जीव का स्वाभाविक गुण कहा गया है। फिर इसे नामकर्म के भेद में क्यों गिना गया है।

समाधान : आगम में अगुरुलघुत्व शब्द का प्रयोग तीन स्थानों पर किया गया है - 1. अगुरुलघुत्व सामान्य गुण 2. अगुरुलघुनामकर्म 3. गोत्रकर्म के क्षय से उत्पन्न होनेवाला अगुरुलघुत्व गुण। ये तीनों भिन्न-भिन्न परिभाषा वाले हैं, जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

1. अगुरुल सामान्यगुण - आलापपद्धति में इसका लक्षण इस प्रकार कहा है '**अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्। सूक्ष्मावाग्गोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः।**' अर्थ - अगुरुलघुभाव अगुरुलघुपन है। अर्थात् जिस गुण के निमित्त से द्रव्य का द्रव्यपना सदा बना रहे, अर्थात् द्रव्य का कोई गुण न तो अन्य गुणरूप हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सके और न कोई द्रव्य अन्य द्रव्य रूप हो सके, अथवा न द्रव्य के गुण बिखरकर पृथक्-पृथक् हो सकें और जिसके निमित्त से प्रत्येक द्रव्य में तथा उसके गुणों में समय समय प्रति षट् गुण हानि वृद्धि होती रहे उसे, अगुरुलघु गुण कहते हैं। अगुरुलघु गुण का यह सूक्ष्म परिणमन वचन के अगोचर है, केवल आगम-प्रमाणगम्य है। यह द्रव्य का सामान्य गुण है और प्रत्येक द्रव्य में पाया जाता है।

2. अगुरुलघुनामकर्म - श्री सर्वार्थसिद्धि 8/11 में इस प्रकार कहा है - **'यस्योदयादयःपिण्डवत् गुरुत्वान्नाधः पतति न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तद्गुरुलघुनाम।** अर्थ - जिसके उदय से लोहे के पिण्ड के समान गुरु होने से न तो नीचे गिरता है और न रुई के समान लघु होने से ऊपर जाता है।' यह कर्म पुद्गलविपाकी है, इस कारण से इसका विपाक शरीर में प्राप्त होता है अर्थात् इस कर्म से शरीरविषयक अगुरुपना एवं अलघुपना होता है, जिसके कारण ही जीव अपने शरीर को उठाकर अन्यत्र जाने व इच्छित स्थान पर रुकने में सर्वत्र समर्थ होता है।

3. गोत्र कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला अगुरुलघुत्व गुण श्री पद्मनन्दिपंचविंशतिका के अनुसार इस गुण से सिद्धों को, गोत्र कर्म का नाश होने से, उच्च गोत्र व नीचगोत्र इन दोनों से रहितपना युगपत् प्राप्त होता है। इससे आचरणकृत महत्व यानि उच्चगोत्रपना तथा तुच्छत्व यानि नीचगोत्रपने का अभाव एक साथ पाया जाता है। यह संसारी अवस्था में गोत्रकर्म के उदय के कारण वैभाविक अवस्था में रहता है और मुक्तजीवों में स्वाभाविक अवस्था में पाया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त अगुरुलघु नामक दो गुण भिन्न हैं और अगुरुलघुनामकर्म भिन्न है। यह भी जानने योग्य है कि उपर्युक्त अगुरुलघु नामक स्वाभाविक गुण का सांसारिक अवस्था में वैभाविक परिणमन ही पाया जाता है। (राजवर्तिक 8/11/12)

जिज्ञासा : क्या तीर्थंकर भगवान् की वाणी मुख्य गणधर ही झेलते हैं? तो फिर अन्य गणधरों का क्या कार्य है?

समाधान : सभी गणधर ऋद्धियों की अपेक्षा समान होते हैं। ये सभी सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता अर्थात् श्रुतकेवली और 63 ऋद्धियों से सम्पन्न कहे गये हैं। तीर्थंकर प्रभु तो दिव्यध्वनि के कारण अर्थकर्ता कहे गये हैं और ये सभी गणधर द्वादशांगरूप ग्रन्थ कर्ता कहे गये है। ऐसा नहीं है कि केवल मुख्य गणधर ही तीर्थंकर भगवान् की वाणी को झेलते हों। ये सभी गणधर समान रूप से तीर्थंकर भगवान् की वाणी को अपनी ऋद्धियों के द्वारा ग्रहण करते हैं और विस्तरित भी करते हैं। श्री उत्तरपुराण पर्व 60 श्लोक नं. 37 में भगवान् अनंतनाथ के जीवनचरित्र में इस प्रकार कहा है-

''जयाख्यमुख्यपंचाशद्गणभृद्वृंहितात्मवाक्''

अर्थ - भ. अनन्तनाथ के सभी जयदि पचास गणधरों के द्वारा उनकी दिव्यध्वनि का विस्तार होता था।

प्रश्नकर्ता : पं. अनुराग शास्त्री मडावरा ।

जिज्ञासा : निश्चय-व्यवहार-सम्यग्दर्शन एक साथ होते हैं या आगे पीछे ?

समाधान : व्यवहारसम्यग्दर्शन साधन है व निश्चय सम्यग्दर्शन साध्य है। अतः व्यवहारसम्यग्दर्शन पहले होता है व निश्चय सम्यग्दर्शन वाद में। कुछ आगमप्रमाण इस प्रकार हैं - 1. वृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा 41 की टोका में इस प्रकार कहा है - **''अत्र व्यवहारसम्यक्त्वमध्ये निश्चय सम्यक्त्वं किमर्थं व्याख्यातमिति चेद्व्यवहारसम्यक्त्वेन निश्चयसम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधक-भावज्ञापनार्थमिति।''** अर्थ - यहाँ इस व्यवहार सम्यक्त्व के व्याख्यान में निश्चयसम्यक्त्व का वर्णन क्यों किया जाता है ? व्यवहारसम्यक्त्व से निश्चयसम्यक्त्व सिद्ध किया जाता है, इस साध्यसाधकभाव को बतलाने के लिये किया गया है।

2. श्री पंचास्तिकाय गाथा 107 की टीका में आचार्य जयसेन ने कहा है - **''इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं। किं विशिष्टम्। शुद्धजीवास्तिकाय-रुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मावस्थायामात्म-विषयस्वसंवेदनज्ञानस्य परम्परया बीजम्।** अर्थ - यह जो नव पदार्थ का विषयभूत व्यवहार सम्यक्त्व है, वह शुद्ध जीवास्तिकाय की रुचिरूप जो निश्चयसम्यक्त्व है, उसका तथा छद्मस्थ अवस्था में आत्मविषयक स्वसंवेदनज्ञान का परम्परा से बीज है।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. श्री प्रवचनसार चारित्राधिकार गाथा 2 की टीका में आ. अमृतचन्द्र स्वामी ने इस प्रकार कहा है- "**अहो निःशङ्कितत्वनिःकांक्षितत्व-निर्विचकित्सत्वनिर्मूढष्टित्वोप-बृंहण-स्थितीकरण-वात्सल्य-प्रभावनालक्षण-दर्शनाचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे।**" अर्थ - अहो निःशंकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, निर्मूढदृष्टित्व, उपवृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना-स्वरूप, दर्शनाचार, तू शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं है, ऐसा मैं निश्चय से जानता हूँ, तो भी तुझको तब तक स्वीकार करता हूँ, जब तक तेरे प्रसाद से शुद्ध आत्मा को प्राप्त हो जाऊँ।

उपर्युक्त आगमप्रमाणों के अनुसार व्यवहार-सम्यग्दर्शन पहले होता है, तदुपरांत वीतरागचारित्र का अविनाभावी निश्चयसम्यग्दर्शन होता है।

जिज्ञासा : आतापन योग क्या है? क्या वर्तमान में यह किया जा सकता है ?

समाधान : श्री अनगारधर्मामृत 7/32 की टीका में इस प्रकार कहा है- "**आतपनमातापनं ग्रीष्मे गिरि-शिखरेऽभिसूर्यमवस्थानम्।**"

अर्थ - गर्मी में पर्वत के शिखर पर सूर्य के सामने खड़े होकर ध्यान करना आतापन नामक कायक्लेश तप है। चतुर्थ काल में तो आतापनयोग में स्थित साधुओं के बहुत से प्रमाण प्रथमानुयोग के शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं। इस पंचमकाल में भी चा.च.आ. शान्तिसागर जी महाराज आदि के द्वारा भी आतापनयोग किये जाने की कथाएँ चरित्र- ग्रन्थों में पाई जाती हैं। श्री भगवती-आराधना में आतापन योग के अतिचारों का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है - "उष्ण से पीड़ित होने पर ठण्डे पदार्थों के संयोग की इच्छा करना, यह मेरा संताप कैसे नष्ट होगा" ऐसी चिन्ता करना "पूर्व में अनुभव किये गये शीतल पदार्थों का स्मरण होना" "कठोर धूप से द्वेष करना" शरीर को बिना झाड़े ही शीतलता से एकदम गर्मी में प्रवेश करना तथा शरीर को पिच्छी से स्पर्श करके ही धूप से शरीरसंताप होने पर छाया में प्रवेश करना इत्यादि आतापनयोग के अतीचार हैं।

१/२०५, प्रोफेसर्स कालोनी,
आगरा (उ.प्र.)

स्वतन्त्रता संग्राम में जैन ग्रन्थ को महावीर पुरस्कार

श्री महावीरजी (राज.)। महावीर जयन्ती पर आयोजित विशाल मेला के अन्तिम दिन 14 अप्रैल को ज्योति जैन द्वारा लिखित 'स्वतन्त्रता संग्राम में जैन' ग्रन्थ को महावीर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भा. दि. जैन तीर्थ कमेटी तथा दि. जैन अति. क्षेत्र श्री महावीरजी के अध्यक्ष श्री नरेश सेठी ने लेखक दम्पत्ति का तिलक लगाकर, शाल ओढ़ाकर सम्मान किया। जैन विद्या संस्थान के संयोजक डॉ. कमल चन्द जैन सौगानी ने पुरस्कार की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला और कहा कि चयन प्रक्रिया के बाद हम पुरस्कार का निर्णय करते हैं। यही कारण है कि यह पुरस्कार कभी विवादों के घेरे में नहीं आया। डॉ. कपूरचन्द जैन ने कहा कि इस पुस्तक में 20 जैन शहीदों, संविधान सभा के छह जैन सदस्यों तथा उ. प्र., म. प्र. व राजस्थान के 750 जैन जेलयात्रियों का परिचय है। डॉ. ज्योति जैन ने जैन विद्या संस्थान और क्षेत्र कमेटी का आभार माना।

डा. कस्तूरचन्द्र सुमन

सांगानेर मन्दिर में भगवान ऋषभदेव ग्रंथमाला का लोकार्पण

जयपुर, 30 अप्रैल 2006, विश्व विख्यात श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी सांगानेर में भगवान् ऋषभदेव ग्रन्थमाला एवं विशाल सिंहद्वार कपाटों का लोकार्पण मुनि श्री 108 सुधासागरजी महाराज के जयघोष के साथ हुआ। प्रात: 8.30 बजे मन्दिर परिसर में भगवान् ऋषभदेव ग्रन्थमाला का लोकार्पण आर. के. मार्बल के कंवरीलाल अशोककुमार पाटनी ने मंत्रोच्चारण के साथ किया। तत्पश्चात् 19' ×12' फीट उतुंग सिंहद्वार के कपाटों का लोकार्पण सेवाराम जैन दिल्ली वालों ने किया।

निर्मल कासलीवाल
मानद मंत्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य-श्रीविद्यासागर-पूजनम्

रचियता-मुनि श्री प्रणम्य सागर जी

निर्ग्रन्थो निरतात्मसौख्यनिलयो मुक्त्यातुरस्तारकः,
तीर्थोद्धाकर! वीतकामकलहो, विज्ञोपि गोरक्षकः।
सन्मार्गं हृदि शान्तितो नयति यो, भव्यञ्च मुक्तिश्रिये,
विद्यासागर-पूज्यपाद-कमलं, संस्थाप्य सम्पूजये॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

1

जन्मान्तकापन्नभयातिभीता,
जवञ्जवे जन्तव आर्तनीता।
विद्यागुरोर्चन्ति हरोपविद्या,
भवन्तमद्भिश्चरणं हि सर्वाः॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशयाय जलं नि० स्वाहा।

2

कृतं मया चन्दनपूतलेपं,
न शीतमासं मनसापि किञ्चित्।
ततो घसन्तप्तमनो विशान्त्यै
तवार्च्यते मङ्गलपादपद्मम्॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।

3

ज्ञेयप्रभावेन हि खण्डितो य-
दखण्डितज्ञानविमण्डनाय।
विधौतविद्योतनतण्डुलौघैः
पादाम्बुजं वै सगुरोर्च्यते ते॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० स्वाहा।

4

लोके तु सत्वाः कुसुमास्त्रदोषैर्भ्रमन्ति
नित्यं भवभूमिमध्ये।
कामाष्टकं शर्तुममर्त्यशत्रुं,
पुष्पैस्त्वदीयं चरणं यजेऽहम्॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय कामबाण-विनाशनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

5

वरं विशुद्धं रूचिरं मयेदं,
भुक्तं मुहुर्मोहवशेन सर्वम्।
क्षुद्रोगशान्त्यै भुवि नात्र वैद्यो,
नैवेद्यमानीय पदे यजेऽहम्॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

6

उत्मत्तवन्मोहतमः प्रसारान् निधाय
दुःखं भवभार ऊढः।
अलब्धभूतिं चरणं विलब्धु,
मयार्च्यते दीपकरोचिषा ते॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

7

एकं निमित्तं भवरोगसूते
र्देहात्ममध्ये-विपरीतबुद्धिः।
भक्त्यानले कल्मषमोहधूपं
क्षिप्त्वा पवित्रं शरणं दधेऽहम्॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं नि.स्वाहा।

8

वातादमक्षोट मनूनमैलां,
प्रस्थाप्य शुद्धं तपनीयपात्रे।
अमूल्य-निर्वाण-फलं समाप्तु,
पदानुरागी तव पूजयेऽहम्॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं नि० स्वाहा

9

विद्याम्बुधे! ते हिमचन्दनं वाः,
सुतण्डुलं वा कुसुमं प्रदीपम्।
धूपं फलं चारुचारुं मिलित्वा,
प्रपूज्यते प्रामुमनर्घधाम॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागर मुनीन्द्राय अनर्घपद-प्राप्तये अर्घं नि० स्वाहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयमाला (चौपाई)

गुरूगुणधामगुरो भुवि भक्तः, को गातुं गुणगानं शक्तः।
नामालापोपि यतः पापं, हन्ति ततोऽहं ब्रुवे प्रतापम्॥ 1॥
दक्षिणभागे भारतदेशे, रम्ये कर्नाटकप्रदेशे।
ग्रामे सदलगि सत्कुलगेहे, बहुलक्षणयुतजननी-देहे॥ 2॥
शरत्रियामावसिते दिव्यः शिशुरजनि हि शशिकान्तिर्भव्यः।
पितुर्मलप्पासीत्सुनाम, सुश्रीमतिश्च मातुर्नाम॥ 3॥
रूप्यसमं रूपं ते रुचितं, सकलजनानामङ्के ललितम्।
नासया हि जितचम्पकपुष्पं, रागाकीर्णकपोलं रक्तं॥ 4॥

दोहा

कण्ठे नो रेखात्रयं किन्तु रत्नमयधाम।
विद्याधर भूमौ ततो विश्रुतनामाभाणि॥ 5॥

चौपाई

सुखतो विगते सति शिशुकाले, किं सत्यं किं हेयमिहाले।
इत्यूहापोहं मम चित्तं, तुदते किं करणीयं युक्तम्॥ 6॥
सहकालेने हि जातं वित्तं, क्षययुतमघखानिर्वै चित्तम्।
काले कालौ कलिः प्रतिपादे, कालो व्यर्थमेति संवादे॥ 7॥
कारागारं वनितापत्यं, भोगं भंगुरमखिलमसत्यम्।
गृहतो मनसि मराले मत्वा, पुरमजेमरं प्रति लघु गत्वा॥ 8॥
भवता देशव्रतं गृहीतं, देशभूषणाद्यतेः समीपम्।
रुचितो यजतः पाठतो वीतं, वर्षं मुक्त्वा तत् सामीप्यम्॥ 9॥
किशनगढेगमदथ पठनार्थं, तत्रस्थितसुमुनेः करुणार्थम्।
याचते स्म संज्ञं ज्ञानाब्धिं, कविं वरिष्ठञ्चागम-विज्ञम्॥ 10॥

दोहा

नमो ज्ञानसागरचिदे, विगतमोहरतिमान
शान्तचित्त! निःस्पृहबुधे, निखिलगुणौघनिधान॥ 11॥

चौपाई

सम्प्राप्यारं पदं प्रशीतं, हृष्टस्तृषातुरैर्वाः पीतम्।
शुभलक्षणाञ्छनयुतगात्रं, दृष्ट्वाभूदुपकारक पात्रम्॥ 12॥
शिष्टमधुरमितनम्रैर्वाक्यैर्भक्त्याचरणसपर्याकार्यैः।
लब्ध्वा हृदये परां प्रसत्तिं, संप्रवर्ध्य गुरुवचनसुभक्तिम्॥ 13॥
कामाक्रोशरीन्विदित्वा, बाह्यान्तरसङ्गं हित्वा।
तत्पादे मुनिदीक्षावाप्ता, सर्वसिद्धिदा जिनरूपाप्ता॥ 14॥
यथाजातदैगम्बररूपं भवता हितं ततं चिद्रूपम्।
चेतनसूतसुधां सुपातुं, त्रासितसर्वजनानवपातुम्॥ 15॥
अवतरितो भुवि भुवनहितार्थं यथा कौमुदी जलेरुहार्थम्।
कल्याणाभिनिवेशकचक्षुः शिथिलाचरण-विनाशकभिक्षुः॥ 16॥

दोहा

महाव्रताभूषितवपुर्विद्याब्धस्त्वं नाम ।
सत्यवचोगुण-धारको देहि शान्तिसुखधाम॥ 17॥

चौपाई

धर्मध्याने तत्त्वे सारे संवेगे चिन्मयसंसारे।
यस्य मनो लगति श्रुतपाठे परहितसम्पादनकरणार्थे॥ 18॥
ज्ञानगुरूणां प्रथमः शिष्यः त्वं, सुशोभितः पट्टे यस्य।
सम्प्रति त्वमन्तरमतियोगी मनोजनानामक्ष-विभोगि॥ 19॥
संस्कतपद्ये कृतमनवद्यं, षट्शतकं बहु-हिन्दी-पद्यम्।
मूकमाटीकृतिरद्भुतपात्री पराघ्यात्म-जिनदर्शनदात्री॥ 20॥
क्षुद्रकान्तगिरामयिभेत्ता, जन्मजरारीणामतिहर्ता
जय जय जय जिनशासनभक्त, जय जय निर्मम चानासक्त॥21॥
दय दय दय रत्नत्रय-भूतिं भवतु भवतु मम तवानुभूतिः।
नय नय नय मे श्रीप्रासादं भव भव भव हर्षाय सदा त्वम्॥ 22॥
कलिकाले भो! महद् विचित्रं, दर्शनमेतादृशमाचार्यम्।
बहूक्तेन किं धन्यमन्यः शमभावाय हि पुनः 'प्रणम्य'॥ 23॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अनर्घ पद-प्राप्तये अर्घं नि० स्वाहा।

पूजार्हं पूजा कृता गुणपुञ्जं प्रणमामि।
पूजातः पूज्यस्य यत् पूज्योऽहं विभवामि॥ 24॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्॥

प्रस्तुति - विक्रम चौधरी (जबलपुर)

अवश्य मँगवायें

जिज्ञासा-समाधान (भाग १)
समाधानकर्त्ता - पं. रतनलाल बैनाड़ा
मूल्य 50 रुपये

ग्रन्थ में प्रकाशित 278 जिज्ञासाओं के समाधान का संग्रह किया गया है। जिज्ञासाएँ चार अनुयोगों में विभाजित हैं। स्वाध्यायप्रेमियों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है। मनिआर्डर द्वारा 50 रुपये भेजकर शीघ्र प्राप्त करें।

सम्पर्क सूत्र
ब्र. भरत जैन
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
स्लीमनाबाद, जिला कटनी (म.प्र.)
मो. : 098936-31671

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्

डॉ. कुसुम पटोरिया

अन्तर्बहीरूपमखण्डमेकं,
रागादिकालुष्यविमुक्तचित्तं।
सद्धर्मधौरेयमनुत्तरन्तं ,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 1॥

सम्पूर्णविद्यासद्धद्रहज्ञनदीष्णं,
ज्ञानप्रभादीद्वह्नो यदीयं।
संसारसिन्धूत्तरणे तरीन्तं,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 2॥

वीरस्य सद्वर्त्मनि सञ्चरन्तं,
लोकात्मकल्याणसुसाधयन्तं ।
भक्त्या गुरौ पूरितमानसं तं,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 3॥

अध्यात्मक्षीरोदसमुत्थमथ्यं,
ज्ञानामृतं वर्षकम्बुदन्तं।
स्फूर्तिं हि प्राणेषु सुचारयन्तं,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 4॥

गाम्भीर्यमाधुर्य विशेषवाचा,
भव्यान् हि सभ्यान् खलु पावयन्तं।
तेषामघौघं परिक्षालयन्तं,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 5॥

भक्तान् तु सन्मार्गमुपादिशन्तं,
वात्सल्यभावेन विबोधयन्तं।
आकण्ठतृप्तिमनुभावयन्तं ,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 6॥

धर्माय बालान् प्रतिबोधयन्तं,
मैत्रीसमूहं च विवर्द्धयन्तं
दुस्साध्यसाधुव्रतमाचारन्तं,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 7॥

रोगैस्सदा तीव्रपरीक्ष्यमाणं,
क्षीणं तपोतप्तवपुः दधानं
धैर्येणं ज्ञानेन च तं तरन्तं,
सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहय॥ 8॥

मुनि श्री क्षमासागर जी को मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ

1

जिनका व्यक्तित्व अन्तर्बाह्य अखण्डित एकरूप है, जिनका चित्त रागादि कलुषताओं से विमुक्त है, जो सद्धर्म की धुरा को धारण करनेवाले अनुपम अनुत्तर हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

2

सम्पूर्ण विद्यारूपी नदी के जो पारंगत हैं, जिनका मन ज्ञानप्रभा से दीप्त है, जो संसारसिन्धु को पार करने के लिए नौका के समान हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

3

महावीर द्वारा निर्दिष्ट सन्मार्ग पर जो चल रहे हैं, आत्मकल्याण के साथ लोक कल्याण की भी सुन्दर साधना कर रहे हैं, जिनका मन गुरु की भक्ति से लबालब भरा हुआ है, उन क्षमासागर मुनिराज को मेरा प्रणाम है।

4

जो अध्यात्मरूपी क्षीरोनिधि के मंथन से उत्पन्न ज्ञानामृत की वृष्टि करने वाले मेघ हैं, जो प्राणों में स्फूर्ति का संचार करते हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

5

जो गाम्भीर्य व माधुर्य गुण से युक्त वाणी के द्वारा सभा में स्थित भव्यों को पवित्र करते हुए उनके पापसमूह का प्रक्षालन करते हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

6

जो भक्तों को सन्मार्ग का उपदेश दे रहे हैं, वात्सल्य भाव से उनको संबोधित कर रहे हैं तथा आकण्ठ तृप्ति का अनुभव करा रहे हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

7

बालकों को धर्म के विषय में प्रतिबोधित करनेवाले, मैत्रीसमूह नामक संस्था को वृद्धिंगत करनेवाले, कठिनता से साध्य मुनिव्रत का आचरण करनेवाले क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

8

रोग सदा तीव्रता से जिनकी परीक्षा लेते रहते हैं, उन तपस्या से तप्त क्षीणकाया को धारण करनेवाले तथा धैर्य व ज्ञान से रोगों द्वारा ली गई परीक्षा को उत्तीर्ण करनेवाले क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

रीडर, संस्कृत विभाग
नागपुर विद्यापीठ, नागपुर (महाराष्ट्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

नागपुर में 'आचार्य विद्यासागर संस्कार केन्द्र' का शुभारंभ

अक्षय तृतीया के पावन अवसर पर दि. 30 मई 2006 को श्री दि. जैन परवार मंदिर ट्रस्ट नागपुर के अंतर्गत संस्था महावीर दि. जैन पाठशाला द्वारा आयोजित विशाल धर्मसभा में मुनि श्री समता सागर जी महाराज, ऐलक निश्चय सागर जी महाराज एवं प्रो. रतनचन्द्र जी जैन भोपाल व अन्य आमंत्रित सदस्यों के सान्निध्य में हजारों जैन धर्मप्रेमियों के बीच "आचार्य विद्यासागर संस्कार केन्द्र" के नये भवन का उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

धर्म सभा में मुनि श्री समता सागर जी महाराज ने अपने उद्बोधन में कहा कि अक्षय तृतीया का पर्व जैनधर्म में विशेष महत्त्व रखता है। आज के दिन किसी भी शुभ कार्य का शुभारंभ श्रेष्ठ माना जाता है एवं आज के ही दिन आहार दान की क्रिया का शुभारंभ हुआ था। मुनिराज आदिनाथ को राजा श्रेयांस ने जातिस्मरण के आधार पर प्रात:कालीन बेला में पड़गाहन कर इक्षुरस का दान दिया था। श्री विद्यासागर संस्कार केन्द्र महावीर दि. जैन पाठशाला का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी को खेल-खेल में धर्म से संस्कारित करना है। अल्पकाल में 250 से ज्यादा बालक बालिकाओं का इसमें अध्ययन करना एवं उन्हें कम्प्यूटर इत्यादि साधनों से ज्ञान देना निश्चित ही सराहनीय है।

ऐलक निश्चय सागर जी ने अपने संक्षिप्त उद्बोधन में कहा कि अक्षय तृतीया के पावन प्रसंग पर नन्हें-नन्हें बालकों को संस्कारित कर वटवृक्ष के समान स्वरूप दें जिससे वह समाज देश परिवार को शीतलता प्रदान कर सके। प्रो. रतनचन्द्र जैन भोपालवालों ने कहा कि आचार्य श्री विद्यासागर के आभामंडल की किरणें आज मंच पर विराजमान हैं एवं गाँव-गाँव, शहर-शहर में धर्म की प्रभावना कर रही हैं। इस अवसर पर अनेक नगरों से गणमान्य उपस्थित थे, जिनमें प्रमुख सौ. मंजू संदीप जैन, सौ. मोहिनी सतीश जैन, हुकमचंद जैन, प्रमोद जैन, सतीश जैन, राजू व पंकज देवड़िया ब्र. ऋषभ जैन इत्यादि का ट्रस्ट की ओर से शाल, श्रीफल द्वारा सत्कार किया गया।

मंच संचालन श्री सतीश सिंघई ने सुन्दर ढंग से किया। मंगलाचरण पाठशाला के बालकों द्वारा किया गया।

महेन्द्र जैन 'रूपाली'

चरित्र-निर्माण के लिए अच्छे संस्कार जरूरी

व्यक्ति के चरित्र निर्माण के लिए अच्छे संस्कारों का होना जरूरी है। ये विचार संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के परम शिष्य **मुनि श्री समतासागर जी महाराज** ने व्यक्त किये। वे श्री दिगंबर जैन परवार मंदिर परवारपुरा इतवारी के प्रांगण में आयोजित दस दिवसीय पूजन प्रशिक्षण शिविर के समापन पर श्री महावीर दि. जैन पाठशाला के विद्यार्थियों को संबोधित कर रहे थे। बच्चे गीली मिट्टी की तरह होते हैं। उन्हें अच्छे ढाँचे में ढालना समाज के नेतृत्व की जिम्मेदारी है। टी. वी. संस्कृति समाज के लिए बहुत बड़ा खतरा है। इस अवसर पर **एलक श्री निश्चयसागर जी** ने संबोधित करते हुए कहा कि उसे रोकने के लिए धार्मिक पाठशालाएँ समय की आवश्यकता हैं। ज्ञातव्य हो की परवार मंदिर में पाठशाला का संचालन विगत 50 वर्षों से श्री दिगंबर जैन परवार मंदिर ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है। किन्तु इस बार मुनि श्री समतासागर जी और ऐलक श्री निश्चयसागर जी ने बालकों को विशेष प्रशिक्षण दिया। अपने सरल स्नेही व्यवहार और आकर्षक विधाओं से पूजन प्रशिक्षण देना शिविर की विशेषता रही। 4 वर्ष से 16 वर्ष तक के 250 विद्यार्थियों ने शिविर में भाग लिया।

थेलेसीमिया का इलाज प्राकृतिक चिकित्सा से संभव है

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय, सागर ने विगत १० मई २००६ को थेलेसीमिया के मरीजों का दस दिवसीय प्राकृतिक चिकित्सा शिविर लगाया जिसका, समापन २० मई २००६ को किया गया। प्राकृतिक चिकित्सा से अभूतपूर्व परिणाम सामने आये। डॉ. संगीता जैन एवं उनकी डाक्टर्स टीम डॉ. नीता जैन, डॉ. रश्मी जैन, डॉ. मृदुला एवं शिशुरोगविशेषज्ञ डॉ. नीलम जैन ने बताया कि पूर्व में अनेक एनीमिया के मरीजों को उपचार दिया जिससे काफी लाभ मिला। तब इसी धारणा के आधार पर १० मई को थेलेसीमिया के बच्चों को प्राकृतिक चिकित्सा से उपचार देना प्रारंभ किया। इस शिविर में कुल १२ बच्चे आये जिनका प्रथम दिन हीमोग्लोबिन चैक कराया गया। बाद में उन्हें १० दिन तक प्राकृतिक आहार एवं उपचार दिया गया। आहार के रूप में उन्हें दिनभर में ९ बार खाने पीने को दिया जाता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं प्रतिदिन सुबह से व्हीट ग्रास का जूस पिलाकर बच्चों को गीले पानी की टाबिल सिर पर रखकर वाकिंग कराई जाती थी एवं सन-बाथ कराया जाता था। बाद में बच्चों को अंकुरित अनाज एवं ड्रायफ्रूट दिया जाता था। बाद में बच्चों को उनकी शारीरिक स्थिति के अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा का उपचार जिसमें स्टीम बाथ, लोकल स्टीम, मालिश, कटिस्नान, रीढ़स्नान, घर्षणस्नान, पेट-पीठ की पटटी, व्हीट ग्रास, लेमन का एनिमा इत्यादि अनेकों उपचार दिन में करीब ५-६ दिये जाते थे। बच्चों के फेफड़ों को एक्सरसाइज के लिए फिलोमीटर से प्रतिदिन दिन में करीब ५०-६० बार एक्सरसाइज कराई जाती थी। बच्चों के अनुकूल खुशनुमा माहौल बनाए रखने के लिए उनसे बच्चों जैसा व्यवहार करने के लिए गेम्स खिलाए गये। बच्चों को १० दिनों में पौष्टिक, एवं स्वादिष्ट भोजन उपलब्ध कराया गया। बच्चों के अधिकांशत: लीवर, स्पलीन, पेनिक्रियाज, एवं पेट पर अधिक उपचार दिया गया। बच्चों की लगभग प्रतिदिन मालिश एवं घर्षण स्नान किया गया, जिसका नतीजा यह रहा कि सभी बच्चों के हीमोग्लोबिन में वृद्धि हुई। कुछ बच्चों का हीमोग्लोबिन स्टेबिल रहा।

एक विशेष बात। थेलेसीमिया के जिले में संभवत: 22-24 मरीज है। लेकिन इनमें से अधिकांश गाँव में हैं और मध्यमवर्गीय हैं। इन बच्चों के लिए सरकार की ओर से मात्र बी. टी. के अलावा अन्य कोई सहयोग नहीं है। जैसे बच्चों को यदि प्राकृतिक चिकित्सालय में इलाज दिया जाये, तो 3000/- प्रतिमाह खर्च आयेगा। दो-तीन बच्चों को छोड़कर बाकी बच्चों की आर्थिक हालत अच्छी नहीं है। यदि सरकार या एन. जी. ओ. संस्था या दानदाता इस ओर अपना ध्यान देवें, तो बच्चों का विकास किया जा सकता है। भाग्योदय तीर्थ में इन्हें लगातार उपचार दिया जायेगा, तो इन्हें काफी लाभ मिल सकता है। म. प्र. सरकार ने अभी तक प्राकृतिक चिकित्सकों का रजिस्ट्रेशन नहीं किया। अभी दिनांक 13/5/06 को भोपाल में म. प्र. प्राकृतिक चिकित्सा एसोसियेशन ग्रुप माननीय स्वास्थ्यमंत्री श्री अजय विशनोई जी से मिला। उन्होंने आश्वासन तो दिया, लेकिन कार्यरूप परिणत कब होगा कह नहीं सकते। सागर में 50 बिस्तरों का प्राकृतिक चिकित्सालय है। हमारे जिले के कलेक्टर एवं सी. एम. ओ. श्री वी. के. मिश्रा जी कोई सहयोग राशि देकर इन बच्चों को और प्राकृतिक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करा सकते हैं या माननीय सांसद जी, माननीय विधायक गण व अन्य राजनैतिक व औद्योगिक हस्तियाँ भी अपना सहयोग प्रदान कर इन बच्चों को जीवनदान जैसा बड़ा दान दे सकते हैं।

डॉ. रेखा जैन
भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्यालय
खुरई रोड, सागर - 470001 (म.प्र.)

गृहणीरत्न पुष्पा जैन 'सरल' का वियोग

जबलपुरनिवासी श्रेष्ठ गृहणी श्रीमती पुष्पा जैन 'सरल' का आकस्मिक निधन 02-06-2006 को हृदयाघात से हो गया है, वे अपने धार्मिक आचार-विचार, गृह-संचालन की दक्षता एवं पारिवारिक मृदुव्यवहार के कारण समस्त रिश्तेदारों और परिचितों में गृहिणीरत्न के रूप में विख्यात, मिष्ट एवं शिष्ट वार्ता की धनी पुष्पा जी देश के विख्यात संत-चरित्र-लेखक श्री सुरेश जैन 'सरल' की धर्मपत्नी थीं। विगत् 10 वर्षों से सरल जी के साथ देश के अनेक महान साधु-संतों, आचार्यों और आर्यिका माताओं के आशीष और वात्सल्य से अभिभूत थीं।

भारत भूषण जैन
द्वारा - श्री सुरेश जैन 'सरल'
293, सरल कुटी, गढ़ाफाटक,
जबलपुर

श्रीमती मदनमंजरीदेवी वर्धमान शास्त्री का स्वर्गवास

सोलापुर : जैनागम के प्रख्यात विद्वान् व्याख्यान-केसरी विद्यावाचस्पति तथा अनेक जैनपत्रों के संपादक, संशोधक स्व. पं. वर्धमान शास्त्री, सोलापुर की धर्मपत्नी श्रीमती मदनमंजरीदेवी का स्वर्गवास दि. 20/05/2006 को वृद्धाप्य के कारण हो गया है।

प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र दक्षिण जैन काशी मूडबद्री (कर्नाटक) इनका जन्मस्थल है। उन्होंने अपने जीवन को विविध तीर्थक्षेत्रों के विकासार्थ प्रदत्त दान, भारत के अधिकाधिक क्षेत्रों का दर्शन, विविध व्रताराधना, त्यागी सेवा इत्यादि कार्यों से सफल किया था।

प्रा.सौ.सुजाता शास्त्री, सोलापुर.

श्री दौलतराम जैन तिजारिया के देवलोक-गमन

परममुनिभक्त एवं समाज सेवी श्री दौलतराम जैन तिजारिया का दिनांक 28 मई 2006 रविवार को जयपुर में णमोकारमंत्र का जाप करते हुए देहवसान हो गया। आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलतः तिजारा निवासी थे, आपका जन्म 9 अप्रेल 1917 को हुआ था।

आपने तिजारा में यात्री विश्राम गृह का निर्माण, चांदखेड़ी में आवास केशोरायपाटन में वेदी निर्माण, तलवंडी जैन मंदिर में औषधालय कक्ष का निर्माण कराया। अनेकों जैन मंदिर एवं संस्थाओं को मुक्त हस्त से दान दिया। आप सकल जैन समाज कोटा एवं तलवंडी जैन समाज के संरक्षक थे, आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व बहु आयामी प्रतिभा का धनी था। उनके निधन से समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

उनकी पुण्य स्मृति में परिवार ने ग्यारह पोलियो आपरेशन के संकल्पसहित लगभग एक लाख रुपये विभिन्न मंदिर, संस्थाओं को प्रदान किए हैं।

रमेश जैन तिजारिया

कासलीवाल जी के निधन से समाज को क्षति

बाराँ (राज.) जैन समाज के शिरमोर, सबसे वृद्ध ''ख्याति प्राप्त'' धर्मवीर श्री मदनलाल जी कासलीवाल दिनांक 22.3.06 को दिन के 4.45 पर अपने परिजनों को छोड़कर अनन्त में विलीन हो गये। समाज ने उन्हें धर्मवीर की उपाधि से अंगीकार किया है। जब कभी समाज में विकास व अनुष्ठान की बात होगी, तब श्री कासलीवाल जी की याद आये बिना नहीं रहेगी।

प्रेमचन्द जैन अध्यक्ष

अनेकान्त सम्यग्ज्ञान शिविर सम्पन्न

पूज्य मुनि श्री अनंतानन्दसागर जी की पावन प्रेरणा से ऐलक श्री दिव्यानंद जी के सान्निध्य में उपर्युक्त शिविर दिनांक 30.4.06 से 9.05.06 तक ब्रह्मचारी श्री संदीप सरल, संस्थापक अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना (म. प्र.) के निर्देशन में श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर शाहपुरा भोपाल (म.प्र.) में सम्पन्न हुआ।

ब्र. संदीप सरल द्वारा, अक्षय तृतीया के पावन दिवस पर, अमर कवि पं. दौलत राम जी की बेजोड़ रचना छहढाला के स्वाध्याय से शिविर आरंभ किया गया। यह वही दिन था जिस दिन पंडित जी ने छहढाला की रचना पूर्ण की थी।

अपराह्नकालीन शिविर में द्रव्य संग्रह एवं जिनागम प्रवेश का स्वाध्याय क्रमशः क्षुल्लक 105 श्री दिव्यानन्द जी द्वारा एवं ब्र. संदीप सरल द्वारा कराया गया।

पूज्य अनंतानंद सागर मुनिराज ने प्रतिदिन सांयकाल मरणसमाधि साधना पर सारगर्भित प्रवचन दिए।

ब्र. संदीप सरल द्वारा रात्रिकालीन शिविर में प्राकृत व्याकरण सिखाया गया एवं प्राकृत भाषा की सुंदरतम 51 गाथाएँ अर्थसहित पढ़ाई गईं।

अन्तिम दिन पूज्य मुनि श्री एवं क्षुल्लक जी के आशीर्वाद से एवं ब्र. भैया की प्रेरणा से लगभग 50 बच्चों जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की, जिसमें सभी बच्चों ने उत्साह पूर्वक अष्टमूल गुणधारण किए, सप्त व्यसनों के त्याग एवं मांसाहारी होटलों में बना शाकाहारी भोजन न करने का संकल्प लिया।

समापन के अवसर पर प्रो. रतनचन्द्र जैन ने स्वाध्याय में श्रावकों की रुचि के अभाव पर चिंता व्यक्त की। सचिव संतोष कुमार जैन ने सभी शिविरार्थियों को एवं आयोजकों को धन्यवाद ज्ञापन किया। शिविर के आयोजन में श्रीमती संध्या जैन की भूमिका प्रशंसनीय रही।

धरमचन्द बाझल्य

गुरूकुल ने पुनः इतिहास दुहराया

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल पाण्डुकशिला परिसर जबलपुर (म.प्र.) में हायरसेकेण्ड्री के शत प्रतिशत छात्रों ने परीक्षा को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ज्ञात इतिहास के नालंदा और तक्षशिला नामक शिक्षा केन्द्रों की याद ताजा कर दी। यह विद्यालय गत 5 वर्षों से 100 प्रतिशत परीक्षा परिणाम दे रहा है। इस वर्ष विद्यालय के सर्वश्रेष्ठ छात्र धीरजकुमार जैन ने सभी छात्रों में प्रथम स्थान प्राप्त किया तथा रितुराज द्वितीय एवं बसंत तृतीय स्थान पर रहे। इस विद्यालय में जहाँ छात्रों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती है, वहीं उनके व्यक्तित्व के निर्माण की दिशा में प्रेरक शिक्षा भी दी जाती है। गुरुकुल अधिष्ठाता ब्र. जिनेश जी के निर्देशन में तथा अधीक्षक राजेश जी के मार्गदर्शन में विद्यालय के छात्रों को उचित शिक्षा-दीक्षा प्रदान की जा रही है। परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से छात्र सफलता अर्जित कर रहे हैं।

राजेश कुमार जैन
अधीक्षक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डलपुर के विषय में उच्च न्यायालय का आदेश

म. प्र. उच्च न्यायालय जबलपुर के न्यायाधीश माननीय न्यायामूर्ति श्री के. के. लोहाटी ने कुण्डलपुर में निर्माणाधीन बड़े बाबा के नये मन्दिर के निर्माण के स्थगनादेश में संशोधन कर दिनांक 20 मई 2006 को निम्न आदेश पारित किये :

1. पांच सदस्यों की एक कमेटी गठित की गई है जिसमें जिला न्यायाधीश दमोह, कलेक्टर दमोह, पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट दमोह, एक प्रतिनिधि आर्कलोजीकल विभाग और एक प्रतिनिधि कुण्डलपुर सिद्धक्षेत्र कमेटी के सदस्य होंगे। इस कमेटी का कार्य बड़े बाबा की मूर्ति के ऊपर पक्का डोम (Dome) बनवाना और मूर्ति की सुरक्षा, जहाँ मूर्ति वर्तमान में स्थापित है, होगा।

2. कमेटी डोम के निर्माण एवं उसकी Design की स्वीकृति प्रदान करेगी। यदि आवश्यक हो तो कमेटी इस सम्बन्ध में किसी वरिष्ठ तकनीकी विशेषज्ञ की सेवायें भी ले सकेगी। कमेटी का यह दायित्व होगा कि मूर्ति को किसी प्रकार की क्षति न हो।

3. यदि कमेटी में निर्णय लेने में मत-विभाजन हो, तो जिला न्यायाधीश का निर्णय अंतिम माना जावेगा। लेकिन ऐसा कोई भी निर्णय उच्च न्यायालय के आदेश के लिये न्यायालय के समक्ष किसी भी पार्टी द्वारा लाया जा सकेगा और उच्च न्यायालय का फैसला ही मान्य होगा।

4. निर्माणकार्य का सम्पूर्ण व्यय कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी को वहन करना होगा। कमेटी तकनीकी विशेषज्ञ एवं अन्य सभी निर्माण साधन उपलब्ध करावेगी। सम्पूर्ण निर्माणकार्य उच्च न्यायालय द्वारा गठित कमेटी की देखरेख और अनुमोदन से ही किया जावेगा। यदि न्यायालय अन्त में यह निर्णय देवे कि कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी का मूर्ति या मंदिर के स्वामित्व का अधिकार नहीं है, तो कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी किसी क्षति-पूर्ति की अधिकारी नहीं होगी।

5. कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी को न्यायालय में अण्डरटेकिंग (लिखित-वायदा) देना होगी कि मूर्ति के ऊपर गुम्बज (Dome) बनाने का पूरा व्यय वे वहन करेंगे। यह निर्माण मानचित्र में दर्शाये गये भाग का ही होगा। शेष भाग का निर्माण नहीं किया जावेगा। क्षेत्र कमेटी १ करोड़ रूपये की स्योरिटी (जमानत) न्यायालय को प्रेषित करेगी कि निर्माण करते समय मूर्ति को किसी प्रकार की क्षति न हो। यदि कोई क्षति होगी, तो कमेटी को क्षतिपूर्ति करनी होगी।

6. कुण्डलपुर ट्रस्ट को एक ऐसा प्रस्ताव पारित कर न्यायालय को देना होगा, जिसमें निर्माणकार्य की पूरी जिम्मेदारी ट्रस्ट की होगी। यदि प्रकरण के अन्तिम निर्णय में न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मूर्ति प्राचीन महत्त्व की है या पुराना मंदिर संरक्षित स्मारक है तो कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति आदि का दावा नहीं करेगी और पुरातत्त्व विभाग नये मंदिर और मूर्ति का अधिकारी होगा।

7. क्षेत्र कमेटी द्वारा न्यायालय के रजिस्ट्रार को उपर्युक्त अंडरटेकिंग मिलने के पश्चात् न्यायालय द्वारा गठित कमेटी की पहली मीटिंग एक सप्ताह के भीतर होगी, जिससे निर्माण का कार्य शीघ्र प्रारम्भ किया जा सके।

8. यह अंतरिम व्यवस्था उस स्थान के संबंध में है जहाँ मूर्ति वर्तमान में स्थापित है। कमेटी निर्माणकार्य की अनुमति केवल उस भाग की देगी, जो मानचित्र में AA से दर्शाया गया है। शेष भाग के निर्माण की अनुमति नहीं दे सकेगी।

9. कमेटी (न्यायालय द्वारा गठित) निर्माणकार्य की देखरेख करेगी और समय समय पर स्थल निरीक्षण भी करेगी और यह निश्चित करेगी कि मूर्ति सुरक्षित है। इस सम्बन्ध में जिला न्यायाधीश उच्च न्यायालय में अपना प्रतिवेदन प्रतिमाह प्रस्तुत करेंगे और तीन माह पश्चात् अंतिम रिपोर्ट न्यायालय को देंगे।

न्यायालय ने यह भी कहा है कि यह एक अंतरिम आदेश है और अंतिम निर्णय बिना इस आदेश को ध्यान में रखकर गुणदोष के आधार पर किया जावेगा। दोनों पक्ष अपने तर्क देने के लिये स्वतन्त्र होंगे। यदि कोई भी पक्ष इस निर्णय के सम्बन्ध में कोई वाद प्रस्तुत करना चाहे, तो वे आठ सप्ताह तक ऐसा कर सकेंगे उसके पश्चात् इस वाद के निर्णय के लिये केस लिया जावेगा।

न्यायालय ने अपने आदेश में यह भी कहा कि पक्के Dome का निर्माण मूर्ति के ऊपर न्यायालय द्वारा दर्शाये गये भाग तक ही सीमित रहेगा, लेकिन पूजा करनेवालों के लिये अस्थाई शेड आदि की व्यवस्था की जा सकेगी। जिससे उन्हें धूप या वर्षा से परेशानी न हो।

श्री हजारीलाल जी जैन का स्वर्गवास

अ.भा.दि. जैन बघेरवाल समाज एवं श्री आदिनाथ दि. क्षेत्र चाँदखेड़ी (झालावाड़) के संरक्षक स्व. श्री हजारीलाल जैन (खटोड़) का दिनांक 13 अप्रैल 2006 को प्रात: 4:00 बजे अपने कोटा जं. स्थित निवास पर देहावसान हो गया है।

डॉ. राजेन्द्र कुमार जैन, कोटा (राजस्थना)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

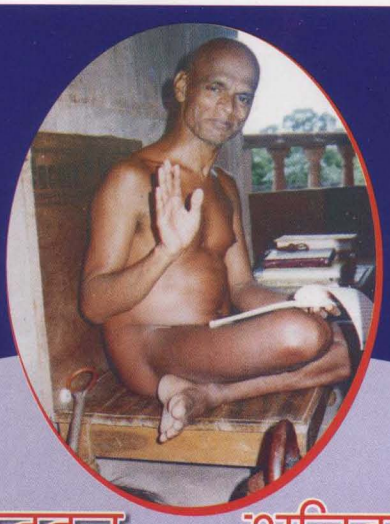

मुनि श्री योगसागर जी

वृषभनाथ-स्तवन

(द्रुतविलम्बित छन्द)

१
वृषभदेव जिनेश्वर पूज्य हैं,
कर रहे गुन गान सुरेन्द्र हैं।
मुकुट तो पद पंकज में रहा,
विषय को तजने मन हो रहा॥

२
वृषभदेव हमें तुम तार दो,
पतित हूँ तुम पावन देव हो।
युग युगान्तर से भ्रमता रहा,
इसलिए तव पाद सु आ गया॥

३
अमर लोक सदा तब पाद में,
स्तवन-वन्दन-कीर्तन में रमें।
चरण में नतमस्तक हैं सदा,
यह सुवर्ण घड़ी मिलती कदा॥

४
त्रिजग-पंकज को तुम सूर्य हो,
अमृत-धर्म पयोधर-आप हो।
प्रभु निरंजन ज्ञान सुधामयी,
वह सुगन्ध शरीर निरामयी॥

५
गरल-पाप-निवारक आप हैं,
जगत के हित चिन्तक आप हैं।
प्रथम तीर्थ-प्रवर्तक आप हैं,
परम-ब्रह्म-निवासक आप हैं॥

६
सलिल उज्ज्वल शीतल पान से,
तपनता मिटती अति शीघ्र ही।
इस प्रकार जिनेश्वर भारती,
भाविक की भव ताप निवारती॥

अजितनाथ-स्तवन

(द्रुतविलम्बित छन्द)

१
अजितनाथ अजेय बलाढ्य ये,
भव अनन्त भवाब्धि सुखा दिये।
प्रबल मोह पिशाच हरा दिये,
कृतकृतार्थ हुआ नर जन्म ये॥

२
कनकवर्ण मनोहर रूप से,
उदित बाल दिवाकर से लसे।
जगत में अति सुन्दर कौन है,
अमर लज्जित शीश झुका रहे॥

३
सकल वैभव औ परिवार से,
तज दिया ममता त्रय योग से।
सघन कानन में तप को लिये,
मन तरंग विलीन सदा हुये॥

४
तव मुखाकृति स्वयमेव ही,
अभय का वरदान मिले सही।
इसलिए तव पाद-सरोज में,
सकल जीव तजें चिर वैर को॥

५
नयन से उर में आ बसे,
हृदय मन्दिर उज्ज्वल भवा से।
सफल भक्त हुआ तव भक्ति से,
सतत भक्ति करें तव नाम से॥

प्रस्तुति - रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UPHIN/2006/16750

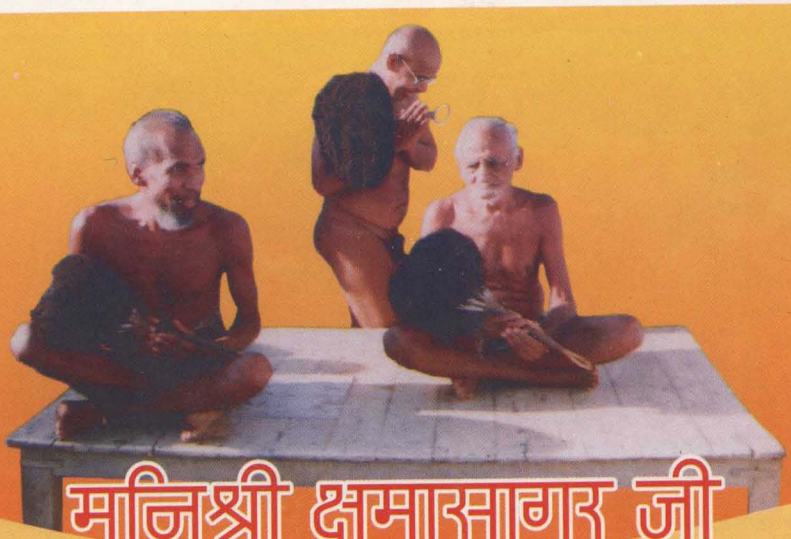

मुनिश्री क्षमासागर जी की कविताएँ

एक अनुभूति

जितनी दूर
देखता हूँ,
उतनी ही
रिक्तता पाता हूँ
जितना निकट
आता हूँ
उतना ही
भर जाता हूँ।

गन्तव्य

यात्रा पर निकला हूँ,
लोग बार-बार
पूछते हैं, कितना चलोगे?
कहाँ तक जाना है?
मैं मुस्कराकर
आगे बढ़ जाता हूँ,
किससे कहूँ
कि कहीं तो नहीं जाना,
मुझे इस बार
अपने तक आना है।

पहला कदम

सारे द्वार
खोलकर
बाहर निकल
आया हूँ,
यह
मेरे भीतर
प्रवेश का
पहला कदम है।

"अपना घर" से साभार

मुनि श्री क्षमासागर जी के स्वास्थ्य में सुधार

आचार्य श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य मुनि श्री क्षमासागर जी एवं मुनि श्री भव्यसागर जी ने अपने मुरैना वर्षायोग के पश्चात् ग्वालियर होते हुए १८ दिसम्बर २००५ को शिवपुरी नगर में प्रवेश किया और वहाँ से १७ फरवरी २००६ को पदविहार करते हुए ६ मार्च को गुना नगर में पदार्पण किया। आचार्यश्री के आदेशानुसार मुनि श्री अभयसागर जी एवं मुनि श्री श्रेयांससागर जी भी कुण्डलपुर से विहार कर ६ मार्च को गुना नगर में पधारे। मुनि श्री क्षमासागर जी, मुनि श्री भव्यसागर जी, मुनि श्री अभयसागर जी एवं मुनि श्री श्रेयांस सागर जी का स्थानीय स्टेडियम में गुना नगरवासियों ने भव्य स्वागत किया और जुलूस के साथ चौधरी मुहल्ले के मन्दिर परिसर तक समारोह पूर्वक उन्हें लाया गया। वहाँ जुलूस धर्मसभा में परिवर्तित हो गया। इस समय चारों मुनिराज इस परिसर में विराजमान हैं और धर्म प्रभावना कर रहे हैं।

मुनि श्री क्षमासागर जी ने अस्वस्थता के बाबजूद शिवपुरी से गुना नगर को पद-विहार किया। आचार्य श्री के आशीर्वाद से उनके स्वास्थ्य में अब सुधार हो रहा है और आशा है कि वे शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ हो जावेंगे।

ब्र. शन्तिलाल जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org